हरिकृष्ण देवसरे
की चुनिंदा बाल कहानियां
चित्र: उत्तम कुमार बाला

नेहरू बाल पुस्तकालय

हरिकृष्ण देवसरे

की चुनिंदा बाल कहानियां

चित्र: उत्तम कुमार बाला

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

कथा क्रम

साहसी रतन

रतन की मां बचपन में ही उसे छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थी। बड़ी मुसीबतों के बाद कल्लू रतन को पाल सका। लेकिन गरीबी है कि पीछा ही नहीं छोड़ती। कल्लू चाहता है कि किसी तरह उसका रतन पढ़-लिख जाए तो उसके जीवन की सारी साधना सफल हो जाएगी। वह सोचने लगा कि कल मकर संक्रांति है। मेला लगेगा। आसपास के गांव के सभी लोग इकट्ठे होंगे। बच्चों को तो और खुशी होगी। पर मेरा रतन मेले में कैसे जाएगा? मैं जानता हूं कि वह मुझसे पैसे नहीं मांगेगा फिर भी गांव के और बच्चों को देखकर क्या सोचेगा? तो क्या मेरा रतन यों ही खाली हाथ मेले में जाएगा? नहीं-नहीं, मैं सवेरा होने के पहले ही जंगल जाकर लकड़ियां काटूंगा और उन्हें बेचकर रतन को मेले के लिए पैसे दूंगा। और हां, कल के खाने के लिए एक दाना भी तो नहीं है। उसके लिए भी पैसे चाहिए।

यह सोचते-सोचते कल्लू सो गया। सुबह चारों तरफ सुनहली धूप फैल गई। रतन उठा, तो उसने देखा कि कल्लू अभी तक सो रहा है। उसने अपने बापू को जगाया। पर यह क्या? उसकी देह तो अंगारे-सी तप रही है। कल्लू को जोर का बुखार चढ़ा था। रतन दौड़कर गया और रमेश भैया, जो उस गांव के ग्रामसेवक थे, को बुला लाया। उन्होंने कल्लू को दवाई दी। रतन, बापू को आराम करने का तकाजा करके खुद लकड़ी काटने चला गया।

सारे दिन वह लकड़ी काटता रहा। जब लकड़ी का गट्ठर उठाकर चला तो शाम हो गई थी। सूरज छिपने को था और रतन को जल्दी से जल्दी गांव पहुंचना था, इसलिए वह जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाते हुए चल रहा था।

अचानक उसे कुछ लोगों की बातचीत और हंसी के ठहाके सुनाई पड़े। वह उस समय नदी के पुल पर से गुजर रहा था। आवाज सुनते ही ठिठक गया।

इधर कई दिनों से बिन्दा डाकू की चर्चा थी। लोग कहते हैं कि बिन्दा इसी इलाके में आ गया है। उसके अत्याचार शुरू होनेवाले हैं। रतन ने इस समाचार को सुना तो था, पर उस तरफ ध्यान नहीं दिया था। पुल के नीचे बैठे हुए आदमियों की बातें सुनकर वह समझ गया कि यह बिन्दा डाकू का गिरोह है जो आज रात उसी के गांव में हमला करने वाला है।

रतन ने लकड़ी का गट्ठा चुपचाप वहीं रख दिया और दबे पैरों भाग निकला। उसने सोचा कि गांव चलकर लोगों को सूचना दे दूं कि डाका पड़नेवाला है, होशियार हो जाओ। लेकिन गांव में किसी के पास हथियार आदि न होने के कारण रतन ने वहां सूचना देने के बजाय थाने पर जाना ज्यादा ठीक समझा। वह उसी ओर बेतहाशा भागने लगा।

रतन का शरीर दर्द से टूट रहा था। गला प्यास से सूखने लगा, लेकिन पैरों की गति कुछ और ही कह रही थी। अभी उसे पांच मील और दौड़ना था। डाका रात में ग्यारह बजे पड़ना था। दो-ढाई घंटे और बचे थे। रतन जल्दी से जल्दी थाने पर पहुंचना चाहता था, लेकिन प्यास से सूखते हुए गले ने साथ न दिया और वह बेहोश-सा होकर गिर पड़ा।

अचानक उधर से सुपरिन्टेन्डेंट पुलिस की जीप गुजरी। उन्होंने रतन को पड़ा हुआ देखकर जीप रोक दी। पानी के छींटे मारने से रतन को होश आया और उसने पानी पिया। फिर उसने सारी बातें बताई। सुपरिन्टेन्डेंट ने कहा – बेटा, तुमने हमें यह सूचना देकर बहुत अच्छा काम किया है।

रतन यह सुनकर बहुत खुश हुआ। उसकी आंखों में चमक आ गई। उसका उत्साह दुगना हो गया।

सुपरिन्टेन्डेंट ने सब-इंस्पेक्टर शेरसिंह से कहा – अभी दलबल सहित चलना ठीक नहीं है। क्योंकि संभवतः डाकुओं को हमारे बारे में पता लग जाए और वे भाग जाएं। इसलिए तुम रतन को गांव में छोड़कर वापस आ जाओ। मैं बाकी लोगों का इंतजार यहीं करता हूं।

सब-इंस्पेक्टर शेरसिंह के साथ रतन गांव के लिए चल दिया। चलते समय सुपरिन्टेन्डेंट ने रतन से कहा कि वह चुपचाप यह पता लगाए कि डाकू किधर से और किस समय आते हैं। उनमें कितने आदमी हैं और किस घर में घुसते हैं।

रतन ने इस काम को करने का पक्का वादा किया। गांव पहुंचते ही, उसके जी में आया कि चलकर जरा बापू को देख आऊं, लेकिन इधर काम बिगड़ जाने के डर से नहीं गया। थोड़ी देर तक इधर-उधर घूमता रहा और फिर गांव के बाहर लगे हुए एक बरगद के पेड़ पर चढ़कर चुपचाप बैठ गया। जंगल से आने वाले हर आदमी को इस पेड़ पर से देखा जा सकता था। लगभग पौन घंटा तक रतन बैठा रहा। थकान और दर्द के कारण उसका बुरा हाल हो रहा था, लेकिन अपने कर्तव्य से एक पल के लिए भी हटना नहीं चाहता था।

अचानक कुछ आदमियों के आने की आहट उसे मिली। वह तुरंत चौकन्ना हो गया और इधर-उधर देखने लगा। सामने से पांच आदमी आ रहे थे। उन सब के सिर और मुंह पर कपड़े बंधे हुए थे। कंधे पर बंदूकें लटक रही थीं। रतन समझ गया कि यही बिन्दा का गिरोह है। जब वे कुछ दूर निकल गए तो रतन धीरे-धीरे पेड़ से उतरा और उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

डाकू एक मकान के सामने रुके। यह मकान रघ्घू आढ़तिया का था। एक डाकू ने दरवाजा खटखटाया। कुछ ही क्षणों में दरवाजा खुला और सब डाकू अंदर चले गए। दरवाजा फिर बंद हो गया।

अब रतन को पुलिस की चिंता हुई। वह इधर-उधर देखने लगा कि तभी गांव के बाहर दो मोटरों की बत्तियां दिखीं। रतन समझ गया कि ये पुलिस की गाड़ियां हैं। वह भागकर वहां पहुंचा और सारी स्थिति की सूचना दी।

सारे गांव में अंधकार फैला हुआ था। सारा काम बड़ी सावधानी से करना था। पुलिस के दल को तीन टुकड़ियों में बांट लिया गया। पहली टुकड़ी ने गांव के चारों ओर घेरा डाला, दूसरी टुकड़ी खेत के पास ओट में छिप गई और तीसरी टुकड़ी रघ्घू आढ़तिया का घर घेरने के लिए आगे बढ़ी। रतन, शेरसिंह और सुपरिन्टेन्डेंट इसी टुकड़ी के साथ थे।

रघ्घू का घर देखने के बाद यह निश्चय किया गया कि इस समय हमला करना ठीक नहीं है। सब डाकू मकान के अंदर बंद हैं। सवेरा होने के पहले ही वे निकलेंगे। तभी उन पर गोली चलाई जाए।

रात को करीब तीन बजे मकान के अंदर कुछ आहट हुई। बिन्दा ने अपने साथियों को सावधान किया और बताया कि पुलिस ने घेरा डाल दिया है। सबसे पहले डाकुओं ने मकान के अंदर से गोलियां चलाईं। जवाब में पुलिस ने गोलियां चलाईं। इसी बीच बिन्दा ने खिड़की से झांककर पुलिस वालों की स्थिति जाननी चाही लेकिन तभी एक जवान की गोली उसके सिर को बेध कर निकल गई। बिन्दा गिर पड़ा। बिन्दा के मरते ही दो डाकू मकान के छप्पर पर चढ़कर भागे। परंतु वे भी पुलिस की गोलियां खाकर वहीं गिर गए। बचे हुए दो डाकुओं ने पहले तो कई गोलियां चलाईं, लेकिन फिर दरवाजा खोलकर भाग निकले। पुलिस की गोलियों ने उन्हें भी धराशायी कर दिया।

सवेरा हो चुका था। गांव के सभी लोग गोली चलने की आवाज सुनकर इकट्ठे हो गए। पुलिस वालों ने पांचों डाकुओं की लाशों को इकट्ठा किया। डाकू दल का अंत देखकर सभी ने संतोष की सांसी ली। मुखियाजी ने सुपरिन्टेन्डेंट साहब को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। लेकिन

सुपरिन्टेन्डेंट ने कहा – मुखियाजी! धन्यवाद हमें नहीं, अपने रतन को दीजिए। रतन ने ही आपके गांव की रक्षा की है। अगर रतन ने हमारी मदद न की होती तो शायद हमें इस डाकू दल का अंत करने में इतनी आसानी न होती। इसने अपनी जान पर खेलकर गांव को डाकुओं से बचाया है। आप लोगों का सौभाग्य है कि इतना साहसी लड़का आपके गांव में है।

मुखियाजी ने प्रसन्नता से रतन को चिपटा लिया। तभी अपने रतन को ढूंढ़ता हुआ कल्लू वहां आ पहुंचा। रात भर उसे होश ही नहीं रहा। सवेरे अपने रतन को न पाकर घबराया हुआ ढूंढ़ने निकला।

सुपरिन्टेन्डेंट ने कल्लू से भी उसके बेटे की प्रशंसा की और सारी कहानी सुनाई। कल्लू की छाती खुशी से फूल उठी। सुपरिन्टेन्डेंट ने कहा – तुम्हारा बेटा तुम्हारा ही नहीं, गांव भर का अनमोल रतन है। तुम इसे मेरे साथ भेजो, मैं इसे पुरस्कार दिलवाऊंगा।

कल्लू ने खुशी से रतन को भेज दिया। उस दिन से रतन गांव भर का सबसे प्रिय और आदर्श लड़का बन गया।

बाल भारती, जून 1962

अक्ल बड़ी या भैंस

एक जंगल था। उसमें एक बहुत बड़ा तालाब था। जंगल के सभी जानवर इसी तालाब में पानी पीने आते थे। तालाब के किनारे एक पुराना पेड़ था। उस पर अकलू नाम का बंदर रहता था। वह बहुत अक्लमंद था, इसलिए सब लोग उसे अकलू नाम से पुकारा करते थे। जंगल के जानवर अक्सर अपने झगड़ों का फैसला कराने अकलू के पास आया करते थे।

एक दिन की बात है। दोपहर का समय था। अकलू अपने पेड़ पर बैठा हुआ था। इसी बीच एक भैंस आई। वह तालाब में घुसकर नहाने लगी। बड़ी देर बाद वह तालाब से निकली, तो उसकी देह में मिट्टी और कीचड़ लगा हुआ था। अकलू ने उसका यह रूप देखा, तो बड़ी जोर से 'खी खी' करके हंसने लगा।

भैंस तो आखिर भैंस ही ठहरी। बिगड़ गई। वह गुस्से में बोली, ''तुझे शर्म नहीं आती, अपने से बड़ों पर हंसते हुए?''

अकलू और जोर से हंसा और बोला, ''अरे, तो ऐसा भी क्या नहाना कि देह में कीचड़-मिट्टी लगी रहे। इससे अच्छा तो यही था कि नहाने न जाती। तूने तालाब का पानी भी गंदा कर दिया और खुद भी वैसी ही है।''

''जा, जा! बड़ा आया,'' भैंस ने धमकाया, ''जरा नीचे आ, तो अभी मजा चखा दूं।''

''अरे जा अपना काम कर,'' अकलू ने ताने से कहा, ''चली है बड़ी बनने। इतना बड़ा डील तो है, पर अक्ल रत्ती भर भी नहीं पाई।'' इस बार अकलू और जोर से हंसा और खुशी से इधर-उधर दो-तीन बार उछला-कूदा।

भैंस भला अकलू की बातें क्यों सहने लगी। उसे ताव आ ही तो गया। वह लाल-पीली होकर बोली, ''तो फिर आ न। इस बात का फैसला हो ही जाए कि कौन बड़ा है तू या मैं?''

भैंस और अकलू की गरमागरम बातें जंगल के अन्य जानवरों के कानों तक पहुंची। उन्होंने तय किया कि किसी न किसी तरह इस झगड़े को निपटाना ही चाहिए।

शाम हुई। जंगल के सभी जानवर तालाब के किनारे इकट्ठे हुए। सबकी राय से यह तय हुआ कि जो कोई इस तालाब को बीच से पार कर जाएगा, वही बड़ा है। इस प्रतियोगिता के लिए निर्णायक शेर बना और 'रेफ्री' गीदड़।

जंगल के सभी जानवर यह मजेदार तमाशा देखने के लिए उत्सुक थे। वे सब तालाब के उस पार जाकर जम गए।

इधर अकलू, भैंस और गीदड़ रह गए। अकलू बहुत परेशान था। उसे तैरना तो आता ही न था। आखिर इतना बड़ा तालाब कैसे पार किया जाएगा!

जब सारी तैयारियां पूरी हो गईं, तो गीदड़ ने दोनों को सावधान किया। उसके 'हुआ-हुआ' करने पर दोनों को तालाब में तैरना शुरू कर देना था। अकलू की परेशानी बढ़ गई। दिल धड़कने लगा। घबराहट के कारण कुछ सूझता ही न था। उसे डर था कि कहीं आज वह जंगल के सभी जानवरों के सामने मूर्ख न साबित हो जाए।

अचानक गीदड़ ने 'हुआ-हुआ' की पुकार लगाई। भैंस तैयार खड़ी थी। वह तालाब में पिल पड़ी। अब अकलू ने भी थोड़ी हिम्मत बांधी और अकल लगाई। अचानक एक तरकीब समझ में आ गई।

अकलू खुशी से उछल पड़ा। उसने इस डाली से उस डाली दो-चार छलांगें लगाईं और तालाब की तरफ झुकी हुई डाल पर जा पहुंचा। भैंस अभी थोड़ी ही दूर गई थी। बस अकलू वहीं से कूद

पड़ा और धम्म से भैंस की पीठ पर आकर बैठ गया। भैंस ने उसे गिराने के लिए एक-दो बार अपनी पूंछ चलाई, पर अकलू ने उसे भी पकड़ लिया।

जंगल के जानवर अकलू की चतुराई देखकर चकित रह गए। वे अब यह देखने के लिए उत्सुक हो गए कि देखें पहले कौन पहुंचता है।

भैंस किसी तरह धीरे-धीरे किनारे पहुंची। अभी जमीन थोड़ी दूर पर थी, कि अकलू फिर जोर से उछला और किनारे पर आकर खड़ा हो गया। सारे जानवर अकलू की अकलमंदी और जीत पर खुशी से चिल्ला उठे।

इधर भैंस बेचारी धीरे-धीरे पानी के बाहर निकली। तभी शेर ने फैसला किया कि अकलू बड़ा है, भैंस नहीं।

और उस दिन से लोग कहने लगे कि आखिर अक्ल बड़ी या भैंस!

पराग, अप्रैल 1963

थिरकते फूल

हवा के झोंकों से गुलाब के फूल झूम रहे थे। उस समय सभी फूल एक महत्वपूर्ण चर्चा में लगे थे।

''यह देखो, फूल आपस में बातें कर रहे हैं!'' परी ने कहा।

''फूल भी बातें करते हैं?'' अजय को बहुत आश्चर्य हुआ।

''हां, यही तो परीलोक की विचित्रता है। इन फूलों की भाषा सभी की समझ में नहीं आ सकती। तुम मेरे साथ हो, इसलिए सुन-समझ सकते हो।''

''लेकिन इस समय ये इतना शोर क्यों कर रहे हैं?''

''ये अपना राजा चुनना चाहते हैं। हर एक फूल अपने को राजा मनवाना चाहता है। इसीलिए बहस चल रही है। आओ, अब हम चुपचाप इनकी बातें सुनें। अगर इन्हें हमारा पता लग गया, तो फिर ये चुप हो जाएंगे।''

परी और अजय चुपचाप एक झाड़ के नीचे बैठ गए।

''मेरी सफेदी मेरी पवित्रता है। मेरी भीनी सुगंध मेरा गुण है। और मेरा रूप...उसकी बात भला मैं क्या कहूं? मुझे गजरे में गूंथकर सुंदर महिलाएं अपनी वेणी में लगाती हैं। तब उनका रूप कई गुना अधिक सुंदर हो जाता है।'' बेला अपने पक्ष में इतना कहकर चुप हो गया।

''रात में जब सारा उपवन सोता है तो मैं अकेले सबकी कमी पूरी करती हूं। मेरे पास से गुजरनेवाला हर कोई एक क्षण के लिए अवश्य रुकता है। मेरी भीनी सुगंध का आनंद लेकर प्रशंसा करता हुआ चला जाता है।'' रातरानी शरमाए स्वर में बोली।

''एक हजार पंखुड़ियों वाला मैं, गजरे की शोभा हूं। मनुष्यों में हजारपति नगर का सेठ माना जाता है। मैं भी फूलों में हजार पत्तियों वाला हूं। गेंदा अपनी बात पूरी नहीं कर पाया था कि एक फूल बोल उठा, ''आप राजा नहीं, नगरसेठ अवश्य बन सकते हैं।''

फूलों ने बड़ी जोर का कहकहा लगाया। सारा उपवन गूंज उठा। गेंदा खिसिया गया। उसने मुंह फुला लिया।

तभी हवा का एक झोंका आया। उसमें गुलाब की महक भरी हुई थी। सभी फूल उस महक से झेंप गए। उन्होंने देखा – गुलाबी होंठों वाले गुलाब हलके-हलके मुसकरा रहे थे।

"हम बहुत दिनों से आप लोगों के साथ हैं। लेकिन न तो आपने हमारी कहानी पूछने की जरूरत समझी और न ही हमने बताई।" एक गुलाब झुककर मुसकराते हुए बोला, "लेकिन आज वह अवसर आ गया है कि हमें अपनी कहानी बतानी चाहिए।"

सभी फूल मन ही मन शरमा गए। सचमुच किसी ने इतने सुंदर फूल की कहानी तक नहीं पूछी। लेकिन अब उसे सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। अपनी डालियां झुकाकर सबने उधर ही कान लगा लिए।

अजय आश्चर्य में डूबा सारी बातें सुन रहा था। यह सब कितना विचित्र है। पेड़-पौधों में भी हमारी जैसी ही जान है। हमारी ही तरह बातें करते हैं। गुलाब की कहानी उसने भी नहीं सुनी थी। वह ध्यान लगाकर बैठ गया। परी उसे इस विचित्र लोक में खोया हुआ देखकर मुसकरा रही थी। लेकिन उसने अजय को टोका नहीं। वह चाहती थी कि अजय पूरी तरह इस विचित्र दुनिया की बातों का आनंद ले।

गुलाब ने कहना आरंभ किया:

उस जमाने में दुनिया की सब चीजें बातें करती थीं। उनमें एक-दूसरे को समझने-बूझने की ताकत हुआ करती थी। तब मैं तूफान का सबसे बड़ा बेटा था। मेरे पंख बहुत बड़े थे। जब मैं उन्हें खोलता तो आसमान को एक दिशा से दूसरी दिशा तक ढक लेता। मेरे बाल बादलों की तरह लहरा जाते। मुझमें बेहद ताकत थी। मैं बादलों को अपना आदेश पालन करने के लिए मजबूर कर देता था।

एक दिन मेरे पिता ने कहा – हमें इस धरती की हर चीज को नष्ट कर देना है। तुम सब भाई मिलकर जाओ और तुरंत अपना काम शुरू कर दो।

मैं सबसे अधिक बलवान था। इसलिए मैंने अपने तूफानी हथियार लिए और धरती को नष्ट करने के लिए आ गया। एक दिन और एक रात पूरी शक्ति से हमने अपना काम किया। इसके बावजूद एक स्थान पर मैंने देखा कि कोई एक जीवन इस धरती पर उगना चाहता है। मैंने उसे नष्ट करना चाहा। लेकिन वह मेरी पहुंच और शक्ति के बाहर था। तब मैं लौट आया। घर आकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए?

"देखो, इस समय धरती हरी-भरी हो रही है। सूर्य की रोशनी उसे और भी अधिक सुंदर और जीवनमयी बना रही है। यह सब नहीं होने देना चाहिए। तुम बादलों को लो। धरती पर जाकर घनघोर वर्षा करो। इतना भयानक तूफान उठाओ और इतनी वर्षा करो कि सब कुछ नष्ट हो जाए।" तूफान ने मुझे हुक्म दिया।

पिता की आज्ञा टालना मेरे लिए संभव न था। मैंने भारी-भारी बादल लिए और धरती पर आया। भयानक तूफान और वर्षा के कारण धरती कांप उठी। चारों ओर उथल-पुथल मच गई। लेकिन वह नन्हा सा जीवन नष्ट नहीं हुआ। वह अब एक सुंदर-सा फूल बन गया था। यह देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैं उसके नजदीक गया और वहां पहुंचते ही एक भीनी सुगंध से मैं झूम उठा।

"मुझ पर दया करो। मेरी सुगंध तुम्हारे लिए ही है।" वह फूल झुककर विनय से कह रहा था।

"ओफ! तुम कितने अच्छे हो।" कहकर मैंने उसे लिपटा लिया।

वह खुशी से झूम उठा। "आज से हम दोस्त बन गए।" – हम दोनों ने वायदे किए।

लेकिन जब मैं वहां से वापस चलने लगा तब फूल उदास हो गया। "तुम मुझे छोड़कर मत जाओ, दोस्त! अगर जाना ही है तो मुझे भी साथ ले चलो।" उसने दुखी मन से कहा। और मैंने उसे अपनी गोद में भर लिया। उसकी भीनी-भीनी महक मेरा मन लुभा रही थी।

जब मैं घर पहुंचा तब देखा कि मेरा पिता तूफान मेरी राह देख रहा है।

"तुम यहां क्यों आए हो?" वह कड़ककर बोला, "तुम्हें शर्म नहीं आती कि एक छोटा सा काम भी पूरा नहीं कर सके। तुमने हिंदुस्तान के उस हिस्से को क्यों छोड़ दिया? उसे क्यों नष्ट नहीं किया?"

"इसलिए कि मैं इस नन्ही सी जान को बचाना चाहता था।" कहकर मैंने उसे वह फूल दिखाया।

"बचाना चाहते थे!" तूफान ठठाकर हंसा और उसने फूल छीनकर नोच डाला। उसकी पंखुड़ियां बिखर गईं। मैंने उन्हें उठाना चाहा लेकिन उसने धक्का देकर मुझे धरती पर ढकेल दिया।

धरती पर गिरकर मैं बेहोश हो गया। जब मुझे होश आया तब मैं उस फूल की खुशबू से चौंक उठा। मैंने देखा कि वहां एक यक्ष बैठा है।

"तुम कौन हो?" मैंने पूछा।

"मैं उसी फूल की आत्मा हूं।" यक्ष ने कहा, "आत्मा कभी नहीं मरती। तुमने मेरे साथ अपनी दोस्ती पूरी की है। इसलिए अब मैं तुम्हें अपना बना लूंगा" – कहकर उसने मुझे छू दिया। और मैं सुंदर गुलाबी रंग का फूल बन गया।

"अब हम दोनों साथ-साथ रहेंगे।" यक्ष ने कहा। मैंने देखा कि वह मुसकरा रहा है। पलभर बाद वह मेरी ही बगल में हवा के झोंके से फूल बनकर लहराने लगा। हम दोनों की सुगंध पूरी हवा में फैल गई। उसके साथ ही साथ हमारा परिवार भी फैलने लगा। लोगों ने हमें 'गुलाब' नाम दिया। तब से आज तक हम बराबर मुसकराते और सुगंध बिखराते रहते हैं।

"ठीक है, आज आप सभी फूलों के राजा हुए," बेला ने प्रस्ताव रखा।

"मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करती हूं।" चमेली ने नम्रता से कहा।

हवा चलने लगी। सुबह की भीनी और ठंडी हवा के झोंके से फूल-फूल थिरक उठा।

"कितने आश्चर्य की बात है कि ये फूल-पौधे भी बातें करते हैं!" अजय ने परी से कहा।

"लेकिन इसमें आश्चर्य की क्या बात है?" परी ने कहा, "ये पेड़-पौधे भी इंसानों जैसा ही जीवन बिताते हैं। इन्हें भी गर्मी लगती है, सर्दी लगती है। बीमार हो जाते हैं और खुश भी होते हैं। कड़ी धूप में ये सूखकर प्राण दे देते हैं। सर्दी में झुलस जाते हैं। बीमार हो जाते हैं। कभी पाला लग जाता है तो कभी सड़ने की बीमारी हो जाती है। इसके अलावा अगर ठीक से खाना-पीना मिलता है तो खुश भी रहते हैं।"

"सचमुच, ये तो हमारी ही तरह हैं।" अजय ने कहा।

"लेकिन तुम्हारी तरह बोल नहीं सकते। वैसे अगर इनकी डाल काट दो तो इन्हें उतनी ही पीड़ा होती है जितनी तुम्हें हाथ कट जाने पर होगी। ये बेहोश भी हो जाते हैं। इन्हें सांप का जहर भी चढ़ता है। ये आपस में बातें कर लेते हैं, लेकिन हर आदमी नहीं समझ सकता।"

"पर मैंने तो उनको बोलते सुना और इनकी बातें भी समझ लीं। ऐसा कैसे हुआ?"
"इसलिए कि तुम मेरे साथ हो।" – कहकर परी हंसने लगी।

फूलों, पेड़-पौधों की दुनिया भी कितनी विचित्र है – अजय सोच रहा था और उनका नाच देख रहा था। संगीत जोर से बज रहा था। लेकिन तभी अजय की आंख खुल गई। रेडियो खुला हुआ था। अजय ने यही धुन तो सपने में सुनी थी। लेकिन बाकी बातें भी कितनी अजीब थीं? क्या वे सच हैं – यही सोचते हुए वह उठ बैठा।

नए परीलोक में, 1963

घंटियां

"टिर्रन्...टिर्रन्...टिर्रन्...टिर्रन्..."

प्रकाश खीझकर उठा और टाइमपीस को तकिए के नीचे दबाकर लेट गया; कानों के इर्दगिर्द रजाई अच्छी तरह लपेट ली, जिससे घंटी की आवाज बिलकुल न सुनाई दे। पर नींद उचट चुकी थी। मन ही मन अपनी दीदी को कोसने लगा, जो रोज रात को उसे सुबह उठकर पढ़ने की शिक्षा देती हैं। न जाने किस वक्त वह ही चुपके से घड़ी में अलार्म लगाकर रख जाती हैं और प्रकाश को मजबूर होकर उठना ही पड़ता है।
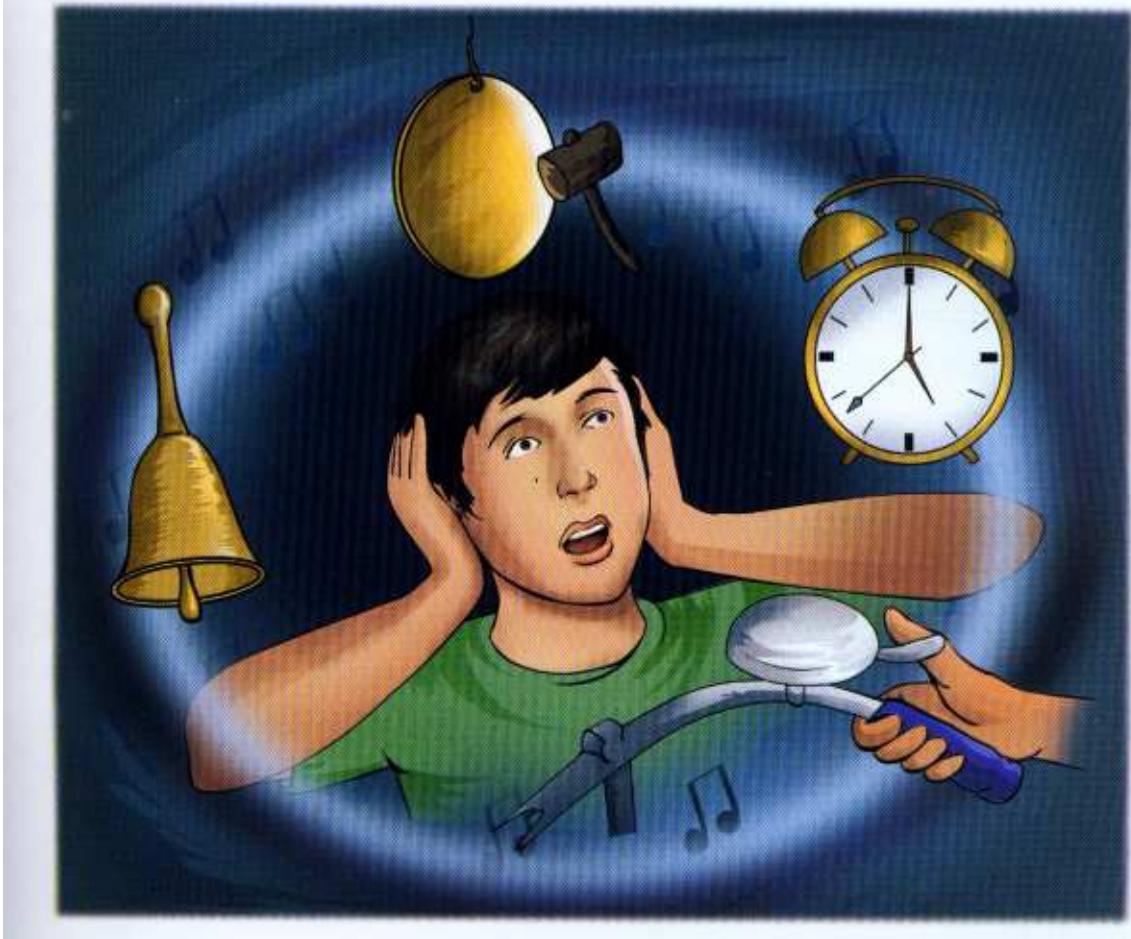
अभी शायद पौ फटी होगी कि कमरे के बाहर दीवार पर लगी कॉल बेल बज उठी। प्रकाश चिहुंक उठा। उसने सोचा कि इस कॉल बेल को भी वह आज उखाड़कर फेंक देगा। इस रामू के बच्चे को कितनी बार समझाया कि दूधवाले के आने से पहले ही उठकर दरवाजे पर खड़ा हो जाया कर, पर वह भी कॉल बेल बजने पर ही उठता है। प्रकाश को लगा जैसे सब लोग हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गए हैं।

किसी तरह इधर-उधर करवट बदली कि तब तक पिताजी ने अपना जाप शुरू कर दिया– "हरे कृष्ण गोविंद हरे मुरारे..." उन्हें भी न जाने क्या आदत है जो मुंह अंधेरे ही उठकर नदी-स्नान को चले जाते हैं और आकर भजन-पूजन में लग जाते हैं। प्रकाश को उनके भजन-पूजन से चिढ़ नहीं है, चिढ़ है उस गिलास के साइज की घंटी से, जिसे वह जोर-जोर से हिलाकर भजन गाते हैं, समझ में नहीं आता कि क्या भगवान भी बिना घंटी बजाए नहीं जागते!

आज सुबह से ही प्रकाश झुंझलाया हुआ था। दीदी ने पूछा – "सुबह उठे थे?"

वह बरस पड़ा – "दीदी, मैं अब इतना छोटा नहीं हूं कि मुझे तुम रोज-रोज एक ही बात कहो।"

इस उत्तर से दीदी का नाराज हो जाना भी स्वाभाविक ही था। वह बिना उनकी ओर देखे बाथरूम में चला गया।

खाना खाकर जैसे ही वह किताबें इकट्ठी करने लगा कि बैठक में लगी दीवाल घड़ी जैसे उसे ही सुनाने के लिए दस का घंटा बजा बैठी। उसका मूड फिर बिगड़ गया। आज फिर पहले पीरियड में लेट पहुंचने पर शास्त्रीजी अपनी गोल-गोल आंखों से उसे घूरेंगे। न जाने क्यों वह समझने की कोशिश नहीं करते कि देर-सवेर तो सभी के साथ होती है।

वह साइकिल पर सवार होकर चला जा रहा था कि झट गांव का एक आदमी उसके सामने आ गया। बड़ी मुश्किल से वह कतराकर साइकिल निकाल ले गया, पर उसकी कुहनी गांव वाले से टकरा गई।

"दिखाई नहीं देता क्या?" गांव वाला बड़बड़ाया।

"तुम्हें नहीं दिखाई देता और मुझे कहते हो..."

"क्या मेरे पीछे आंखें हैं? साइकिल में घंटी क्यों नहीं लगवा लेते? उसे बजा दो, तो सामने वाला हट जाए। भला उसे क्या मालूम कि पीछे से..."

और प्रकाश तेजी से पैडिल घुमाता आगे निकल गया। गांव वाले के मुंह से भी घंटी का नाम सुनकर उसका जी चाहा था कि उसका मुंह नोच ले।

रास्ते में कुछ दोस्त मिल गए।

उनके साथ भी दस-पंद्रह मिनट लग गए। स्कूल पहुंचा, तो मनकीराम चपरासी दूसरे पीरियड का घंटा बजा रहा था। उसे लगा कि यह चपरासी भी उसका शत्रु है। जरूर उसने उसे देखकर ही घंटा बजाया है। और फिर कम्बख्त बजाता भी कितनी जोर से है जैसे सभी बहरे हों।

क्लास में पहुंचा, तो भटनागर साहब नहीं आए थे। उन्हें शायद प्रयोगशाला होकर आना था। वह आए, तो हाथ में पीतल की एक घंटी लेकर आए। आज 'ध्वनि' के संबंध में पाठ था। पूरे पीरियड में वह धातु तथा उस पर किए जाने वाले आघात के कारण होने वाली ध्वनि तथा उसके कंपनों की भौतिक-शास्त्रीय जानकारी देते रहे और प्रकाश अपना माथा पकड़े बैठा रहा। बीच-बीच में जब वह उदाहरण देने के लिए टन् से घंटी बजाते, तो वह चौंक उठता, जैसे किसी ने उसकी कनपटी पर चांटा मारा हो। और वह तिलमिलाकर रह जाता।

पूरा दिन उसने कैसे बिताया, उसकी खुद समझ में नहीं आया। सातवें पीरियड की प्रतीक्षा ही उसका एक मात्र सहारा था। पर सातवां पीरियड जैसे रबड़ बन गया था। वह बार-बार कलाई घड़ी की सुइयों को देखता। कभी सोचता शायद हेडमास्टर के कमरे की घड़ी ठीक नहीं है। शायद मनकीराम ऊंघ रहा होगा। किसी तरह जब जोर-जोर से टन्न्...टन्न्...टन्न्...छुट्टी की घंटी बजी तो उसे चैन मिला कि चलो अब यहां की घंटी से तो मुक्ति मिली।

घर वापस जाते समय उसे लगा कि बड़ी जोर-जोर से घंटियां बजाती हुई कुछ मोटर गाड़ियां पीछे से आ रही हैं। वह एकदम सड़क छोड़कर किनारे हो गया। देखा कि एक के पीछे एक, तीन फायर-ब्रिगेड की गाड़ियां चली आ रही हैं। उनकी घंटियां जोरों से बज रही हैं। लोग उधर ही भाग रहे हैं जिधर वे जा रही हैं, किंतु जब फायर-ब्रिगेड की गाड़ियां उसके करीब से गुजरीं, तो इतनी तेजी से घंटियों का स्वर उसके कानों में घुसा कि उसका मस्तिष्क सुन्न पड़ गया। उसे पल भर को लगा कि वह बहरा हो गया है। भारी मन से वह धीरे-धीरे घर की ओर चला। चाहता तो था कि उधर चलकर देखें कि आग कहां लगी है, पर सिर फटा जा रहा था। घंटियों की आवाजों ने जैसे उसके दिमाग की नसों में पंक्चर कर दिया था।

घर पहुंचा, तो उसकी आंखें बुरी तरह जल रही थीं। दीदी ने माथे पर हाथ रखा, तो बुखार से वह तप रहा था। फौरन प्रकाश की बीमारी का समाचार घर में फैल गया। मां ने आकर उसे बिस्तर पर लिटा दिया और उसका सिर सहलाने लगी। पिताजी ने थर्मामीटर लगाकर देखा, तो बुखार चार को पार कर पांच डिग्री को छूना चाहता था। दीदी ने तुरंत पड़ोस में जाकर डॉक्टर को आने के लिए फोन कर दिया।

प्रकाश अपनी सारी सुधबुध खो बैठा था। तेज बुखार में वह हाथ-पैर पटक रहा था। बीच-बीच में बड़बड़ा उठता – "घंटी...घंटी...घंटी बजी...बंद करो उसे...बंद करो...दीदी, ...अलार्म... मनकीराम...भटनागर साहब...घंटी...घंटी...!"

डॉक्टर ने देखा। दवा दी। फिर बोले – " लगता है, यह किसी बात से बहुत परेशान है। यह 'घंटी-घंटी' क्यों चिल्ला रहा है?"

"डॉक्टर, मैं इसे सुबह उठाने के लिए अलार्म लगाती हूं। यह उठना नहीं चाहता। इसे घंटियों से ही न जाने क्यों चिढ़ हो गई है। सुबह दूधवाला घंटी बजाता है, तब भी रामू पर बिगड़ता है कि दूधवाले से पहले ही जाकर दूध क्यों नहीं ले लिया। बताइए, डॉक्टर, भला घंटी भी कोई ऐसी चीज है जिससे चिढ़ा जाए?" दीदी ने कहा।

डॉक्टर गंभीर होकर कुछ सोचते रहे। इस बीच प्रकाश उसी तरह बड़बड़ाता रहा। डॉक्टर उठे और पिताजी को बाहर ले गए। पता नहीं क्या बातें कीं।

प्रकाश का बुखार उतरा, तो पिताजी ने कहा, "बेटे, आज स्कूल मत जाना। हम लोग शाम को कहीं बाहर चलेंगे।"

और शाम की गाड़ी से सभी लोग शिमला चले गए। उन्होंने एक ऐसा बंगला लिया, जो बिलकुल शहर के किनारे पर था। बिलकुल सुनसान, कहीं कोई आवाज नहीं। दिन भर, रात भर सब उसी में रहते।

प्रकाश वहां एक हफ्ते में ही ऊब गया। सभी बातों का क्रम बिगड़ गया था। कभी शाम को ही खाना हो जाता, कभी देर रात तक बातें होती रहतीं। पिताजी जानबूझकर कलाई-घड़ी घर पर छोड़ आए थे। कुछ समझ में ही न आता था कि कब कितना बजा है। प्रकाश को लगने लगा कि वह जैसे ढीला हो गया है और सब कुछ बेवक्त करता है।

आखिर तंग आकर एक दिन वह बोला – "यहां से चलिए, पिताजी, मन नहीं लगता। कब क्या करूं कुछ समझ में नहीं आता!"

पिताजी मुसकराए। बोले, "तबियत तो ठीक है?"

"हां," प्रकाश ने कहा, "पर लगता है अगर ऐसे ही रहा, तो फिर बीमार हो जाऊंगा। यहां तो कुछ काम ही नहीं है।"

"इसीलिए आदमी के लिए यह बहुत जरूरी है कि वक्त की कीमत को पहचाने। कब क्या करना चाहिए, कितनी देर में करना चाहिए, यह जानना बहुत जरूरी है। अगर आदमी यह जानना बंद कर दे, तो उसकी जिंदगी का कोई ठिकाना नहीं कि वह कब क्या करेगा। छोटी-छोटी चिड़ियों

को देखो, वे भी समय से उठती और सोती हैं। आदमी ने अपने समय का हिसाब रखने के लिए घड़ियां बनाई हैं और समय से सजग रहने के लिए घंटी बजती है। जो तुम्हें चेतावनी दे, सजग बनाए, उससे चिढ़ना कैसा? अगर तुम नहीं चाहते, तो तुम उसे मिटा सकते हो, पर यह तो सोच लो कि क्या उसके बिना तुम रह सकते हो?" पिताजी ने समझाया।

प्रकाश उत्तर में मुसकरा दिया। बोला – "पिताजी, अब मैं खुश हूं। मेरी तबियत भी अच्छी है चलिए, घर चलें, वरना पढ़ाई का बहुत नुकसान होगा।"

और प्रकाश लौट आया। घंटियां पहले जैसी ही बजती रहीं, पर प्रकाश अब उनसे चिढ़ता नहीं, खुश होता है – यह सोचकर कि वे उसे पढ़ने के लिए कहती हैं, वे उसे लेट होने से बचाती हैं।

आकाशवाणी, भोपाल

बंदर का कलेजा

जब बंदर ने मगर की पोल खोल दी तो मगर बहुत शर्मिंदा हुआ। लेकिन बंदर ने मन-ही-मन मगर को पाठ पढ़ाने की बात तय कर ली थी।

कुछ दिनों बाद दोनों में फिर से दोस्ती हो गई थी। बंदर मीठे-मीठे जामुन टपकाने लगा और मगर उन्हें खुद भी खाता और अपनी मगरनी को खिलाने के लिए भी ले जाता।

एक दिन बंदर बोला, "मगर भाई, मैं शहर जाना चाहता हूं।"

"क्यों, ऐसी क्या मुसीबत आ गई?" मगर ने पेड़ के नीचे बालू पर लेटे-लेटे ही पूछा।

"बात यह है कि तुम्हें मैं दिल से प्यार करता हूं। उस दिन मैंने भाभी को अपना कलेजा न खिला कर अच्छा नहीं किया। मुझे आज भी इसका पछतावा है। मैं चाहता हूं कि इस कर्ज से मुक्त हो जाऊं।"

यह सुनकर मगर हंसा और बोला, "अरे, छोड़ो भी इन बातों को। तुम तो घर में ही रहो। शहर जाकर क्या-क्या करोगे?"

"नहीं भाई, नया साल आ गया है। बाजारों में तरह-तरह की मिठाइयां बनी होंगी। मैं जाकर उन्हें खाऊंगा तो मेरा कलेजा खूब मीठा हो जाएगा तब उसे अगर भाभी खाएंगी तो बहुत-बहुत खुश होंगी। अभी तो उन्होंने सिर्फ जामुन का मजा चखा है, तब गुलाब जामुन का मजा आएगा।"

बंदर ने देखा कि मगर के मुंह से लार टपक रही थी। लेकिन उसने करवट लेते हुए मुंह पोंछा और बोला, "ठीक है, अगर जाना है तो जाओ। पर लौटना जल्दी।"

और अगले दिन बंदर चला गया। मगर और मगरनी बड़े खुश थे। उनमें पहले तो झगड़ा हुआ कि बंदर का कलेजा इस बार मगर खाएगा और मगरनी कहती थी कि बंदर ने उसे देने के लिए कहा है। उस दिन तालाब में पानी खूब उछला क्योंकि मगर और मगरनी – दोनों में झगड़ा हुआ था। तालाब की मछलियां बेचारी दिल थामे बैठी रहीं। अंत में आधा-आधा कलेजा बांटकर खाने पर समझौता हो गया।

उधर बंदर शहर में पहुंचा। उसने पहले खूब मिठाइयां खाईं। फिर मगर-मगरनी को पाठ पढ़ाने का उपाय सोचने लगा। वह बाजार में घूम रहा था कि एक दुकान पर उसे दो कलेजे टंगे दिखे। बंदर मन-ही-मन खुश होकर उन्हें वहां से चुराने की ताकझांक करने लगा।

दोपहर में दुकान का मालिक खा-पी कर थोड़ी झपकी लेने लगा। इस बीच बंदर ने दोनों कलेजे उड़ा दिए। उन्हें लेकर वह एक मकान की छत पर आकर देखने-परखने लगा। दोनों नकली थे। प्लास्टिक के बने हुए थे। उसने उन्हें थोड़ा-सा चबाया तो काफी मेहनत लगी और कुछ स्वाद भी न आया। बंदर बहुत खुश हुआ।

अब वह एक पटाके की दुकान में आया। उसने वहां से गोल-मोल पटाका का एक पैकेट लिया। उन पटाकों को उसने दोनों कलेजों में भर दिया।

शाम होते-होते बंदर जंगल को लौट आया। सवेरे-सवेरे मगर बंदर को देखने पहुंचा।

''अरे आओ भाई, मैं तो रात से तुम्हारा इंतजार कर रहा हूं।'' बंदर ने कहा, ''यह देखो,'' और उसने एक कलेजा दिखाया। मगर बहुत-बहुत खुश हुआ।

बंदर बोला, ''भई, आज की दुनिया का निराला ठाठ है। अब तो दिल बदल देते है। मैंने भी सोचा कि क्यों न अपने दोस्त के लिए अपना दिल बदलवा लें। जिंदा रहूंगा तो और सेवा कर लूंगा इसलिए जब डॉक्टरों से दिल बदलवाये तो मेरे पेट में दो-दो दिल निकल आए।'' बंदर ने मगर को कहा, "ये दोनों दिल तुम ले जाओ। एक तुम्हारे लिए, एक भाभी के लिए।''

''पर भैया, तुम जिंदा कैसे हो?'' मगर ने पूछा।

मैंने तो नकली दिल लगवा लिया है।'' कहकर बंदर हंसा और फिर नीचे उतर कर मगर को दोनों कलेजे दे गया।

मगर कलेजे लेकर बड़ी तेजी से पानी के अंदर गायब हो गया। पर थोड़ी देर बाद पानी के अंदर बड़ी हलचल हुई। खूब पटाके चले और पानी की लहरें उछलीं। बंदर पेड़ पर बैठा सारा तमाशा देखता रहा।

कुछ देर बाद मगर और मगरनी की लाश तालाब में तैरने लगीं। बंदर ने मन-ही-मन सोचा कि चलो अब लोग इस तालाब के किनारे आने में डरेंगे नहीं। मगर-मगरनी का आतंक खत्म हो गया।

धर्मयुग, 3 जनवरी, 1971

सीख न दूंगा बानरा

बंदर ने बया पक्षी का घोंसला नोचकर फेंक दिया। बेचारा बया बेघर होकर, एक पेड़ के ठूंठ पर उदास होकर बैठ गया। उस समय बादल छंटने लगे थे। पानी थम गया था। अन्य पक्षी अपने-अपने घोंसलों से बाहर निकल आए। उन्हें बया पक्षी की हालत पर बड़ी दया आई। साथ ही उस अनाड़ी बंदर पर क्रोध भी आया।

एक पक्षी ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा – "देखो तो कैसा अनाड़ी बंदर है! बारिश के इन दिनों में बेचारे को बेघर कर दिया।"

"और क्या, बया ने कोई बुरी बात तो कही न थी।" – दूसरे पक्षी ने पहले की हां-में-हां मिलाते हुए कहा। वह बोला – "बया ने यही तो कहा था न, तुम भी मेरे जैसा घर बना लो या किसी गुफा-कंदरा में जा छिपो। इस तरह पानी में भीगने से क्या लाभ?"

"कोई बात नहीं प्यारे! तुम तो हम पक्षियों में इंजीनियर माने जाते हो। बंदर ने एक घर उजाड़ा तो क्या हुआ? तुम वैसे सौ घर बना लोगे। पर हां, बंदर को उसके किए का मजा जरूर चखाओ।"

घोंसला बनाने में कुशल बया पक्षी उसी दिन से फिर अपना घोंसला बनाने में जुट गया। कुछ ही दिनों में उसका घोंसला तैयार हो गया। लेकिन दुर्भाग्य, एक दिन न जाने कहां से वही बंदर फिर घूमता-फिरता उधर आ पहुंचा। उसने बया का नया घोंसला देखा, तो एकदम आग-बबूला हो उठा। दांत किटकिटाकर बोला – "तूने फिर अपना घर बना लिया! ठहर, तुझे मजा चखाता हूं।" कहकर वह बया के घोंसले की ओर लपका। जान खतरे में देख, बया पक्षी घोंसला छोड़कर उड़ा और दूर एक पेड़ पर जा बैठा। लेकिन बंदर भला क्यों मानने लगा। वह सीधा घोंसले के पास गया और उसे नोचकर फेंक दिया।

बया पक्षी ने अपना घोंसला उजड़ते देखा, तो मन-ही-मन बहुत दुखी हुआ। उसने निश्चय किया कि अब वह कहीं और अपना घोंसला बनाएगा। इस दुष्ट बंदर से छुटकारा पाने का यही उपाय हो सकता है।

उड़ते-उड़ते बया पक्षी एक शहर में पहुंचा। वहां एक बस्ती थी – मजदूरों की। कोई दस झोंपड़िया रही होंगी। बया पक्षी पास के एक पेड़ पर बैठा था। उसने देखा कि खाकी वर्दी पहने एक आदमी आया और उसने एक झोंपड़ी के मालिक से कुछ बातें कीं। झोंपड़ी का मालिक उसके सामने हाथ जोड़ता, पर वह मानने से इनकार करता रहा। देखते-देखते उस खाकी वर्दी वाले आदमी ने झोंपड़ी उखाड़कर फेंक दी।

थोड़ी देर बाद खाकी वर्दी वाला आदमी चला गया। उसके जाते ही कई लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियों से निकल आए और उस आदमी को समझाने-बुझाने लगे। बया पक्षी को लगा कि यह खाकी वर्दी वाला आदमी भी बंदर की ही तरह है, जिससे शायद सभी डरते हैं।

अपनी उजड़ी हुई झोंपड़ी देखकर वह आदमी रो रहा था। उसके पड़ोसी समझा रहे थे – "तुम्हें कितनी बार कहा है कि उसे कुछ दे दो, तो मान जाएगा। आज उसने झोंपड़ी तोड़ दी न!"

"लेकिन भाई, यह तो अंधेर है। जब हमें म्युनिसपेलिटी ने यहां झोंपड़ी बनाने की जगह दी है, तो फिर इस जमादार को हम पर रोब जमाने का क्या अधिकार है?" – दूसरे पड़ोसी ने जरा तैश के साथ कहा।

"कहते तो ठीक हो, पर सुनता कौन है! हर आदमी इस ताक में रहता है कि कैसे किसी से चार पैसे ऐंठ लिए जाएं? आजकल रिश्वत का बोल-बाला है। यह ऐसा पंछी है, जिसकी सहायता से मजे-ही-मजे किए जा सकते हैं।" – पहले व्यक्ति ने कुछ व्यंग्य से कहा।

"सो तो न कहो। तीसरा पड़ोसी बोला – "जब सेर को सवा सेर मिल जाता है, तो अच्छे-अच्छे लोगों के दिमाग ठिकाने लग जाते हैं। बस, हिम्मत होनी चाहिए।

अब उस झोंपड़ी का मालिक बोला – "हां, अब तो इसे सबक सिखाना ही पड़ेगा।"

बया पक्षी ने झोंपड़ी के मालिक की बात सुनी, तो उसने भी मन-ही-मन निश्चय किया कि वह बंदर से अवश्य बदला लेगा। वह छोटा है तो क्या, जो सच्चाई की राह पर चलता है, वह कभी नहीं हारता।

अगले दिन बया फिर उसी पेड़ पर आ बैठा। उसने देखा कि झोंपड़ी का मालिक पूरी मेहनत से अपनी झोंपड़ी तैयार करने में लगा हुआ है। शाम तक उसकी झोंपड़ी बनकर तैयार हो गई। अब बया को इंतजार था – उस खाकी वर्दी वाले जमादार का। न जाने क्यों बया की आंखों के सामने उसी बंदर का चेहरा घूम जाता और फिर अपने घोंसले के उड़ते हुए तिनकों की याद करके वह रो पड़ता।

सवेरे उसे वह रिश्वती जमादार आता दिखाई दिया। बया बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा कि अब आगे क्या होता है।

जमादार आते ही गुर्राया – "तेरी यह मजाल! तूने फिर झोंपड़ी बना ली।"

उसकी आवाज सुनते ही झोंपड़ी का मालिक जल्दी से बाहर आया। उसने हाथ जोड़कर कहा– "हुजूर, गरीब आदमी हूं। मुझ पर दया कीजिए।"

"दया और तुम पर?" जमादार हंसा – "अच्छा, आज देता है कुछ या फिर झोंपड़ी उखाड़ फेंकूं?"

"नहीं, नहीं, मालिक, ऐसा न करें।" – और फिर उसने जेब से पांच रुपये का एक नोट निकालकर जमादार के हाथ में थमा दिया। जमादार खुश हो गया। उसने नोट जेब में रखा, पर जैसे ही वह मुड़ा कि पीछे से आवाज आई – "जमादार, जैसे हो, वैसे ही खड़े रहो।"

जमादार चौंका। उसने मुड़कर देखा, तो उसके चेहरे का रंग उड़ गया। इंस्पेक्टर उसकी ओर आगे बढ़ते आ रहे थे और उसके पीछे थे म्युनिसपल कमिश्नर। उन्होंने पांच रुपये के नोट पर अपने हस्ताक्षर किए थे और वही नोट उसे दिया गया था। जमादार रंगे हाथों रिश्वत लेते पकड़ा गया था। आसपास की झोंपड़ियों के लोग भी निकल आए और उन सभी ने जमादार के अत्याचार की कहानी सुनाई।

बया पक्षी मन-ही-मन बहुत खुश हुआ। अब उसका साहस बढ़ चुका था। उसने बंदर से बदला लेने तथा उसे सबक सिखाने का निश्चय किया। वह फिर उसी जंगल में आया और उसी पेड़ पर अपना घोंसला बनाने लगा।

इस बीच उस बंदर का उत्पात बहुत बढ़ चुका था आसपास के पक्षियों ने बया को फिर से घोंसला बनाते देखा, तो लगे समझाने – "मूर्ख, दो बार घर उजड़ चुका, फिर भी अक्ल नहीं आई। आजकल उस बंदर को बया के घोंसले से ही चिढ़ हो गई है। जिस पेड़ पर घोंसला देखता है, उसे तुरंत नोचकर फेंक देता है।"

लेकिन बया पक्षी जरा भी नहीं घबराया। उसने कहा – "ठीक है, इस बार जब मेरा घोंसला नोचने आएगा, तब बताऊंगा।"

कई दिन की मेहनत के बाद घोंसला बनकर तैयार हुआ। फिर वह सूर्योदय से पहले ही एक बगीचे में पहुंचा। उसने एक अमरूद तोड़ा। डंठल के पास उसने बड़ी चतुराई से एक छेद किया, फिर एक पकी हुई लाल मिर्च उसके अंदर दबा दी। ऊपर से अमरूद का गूदा भर दिया और लेकर वापस अपने घोंसले में आ गया।

कुछ ही देर में उसके तीन-चार साथी पक्षी उड़ते हुए आए। उन्होंने बताया – "बंदर इधर ही आ रहा है। होशियार हो जाओ। तुम्हें तो पहले ही मना किया था। बया ने कहा – "घबराओ मत। सब ठीक हो जाएगा।"

और कुछ ही क्षणों में कूदता-फांदता बंदर उधर आ पहुंचा। बया का घोंसला देखते ही वह उधर लपका। लेकिन तब तक बया पक्षी चोंच में अमरूद दबाए बाहर निकल आया। बंदर अभी एक मोटी डाल पर बैठा था। बया उसके पास की दूसरी डाल में जा बैठा। अमरूद को उसने संभालकर रखा और बंदर से बोला – "आप मुझसे बेकार ही नाराज हैं। यह लीजिए, आज मैं आपके लिए कितना बढ़िया अमरूद लाया हूं! अब मुझ पर दया कीजिए और घोंसले नोचना बंद कर दीजिए।"
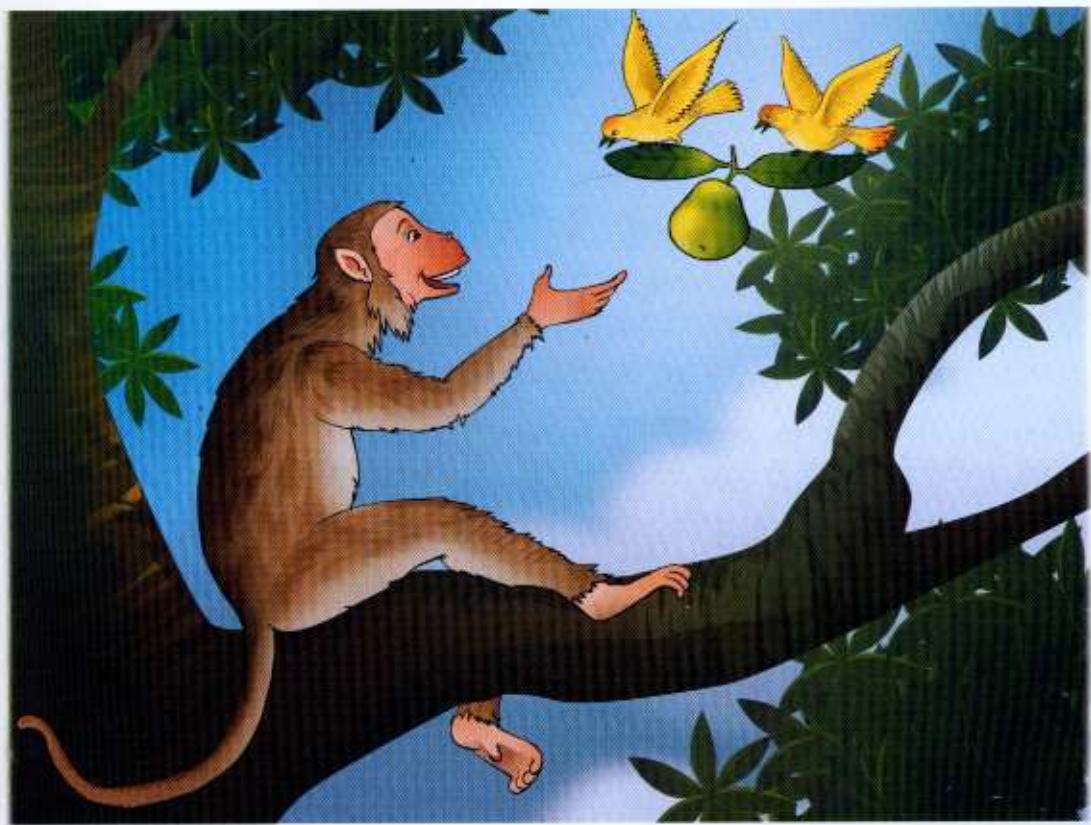
बंदर ने अमरूद देखा तो मुंह में पानी आ गया। वह तुरंत अमरूद की ओर लपका और उठाकर खाने लगा। बया पक्षी उड़कर अपने साथियों के पास आ बैठा। वे पास के पेड़ पर बैठे तमाशा देख रहे थे।

बया ने उन्हें बताया कि उसने अमरूद के अंदर लाल मिर्च छिपा दी है। बंदर जल्दी-जल्दी अमरूद खा रहा था। अचानक वह उछल पड़ा। जोर-जोर से चीं-चीं करता हुआ इधर-उधर भागने लगा। मिर्च ने अपना काम कर दिखाया था। बया और उसके साथी उसे इस तरह उछलते देखकर खूब खुश हुए। बंदर को अब बया पर बेहद क्रोध आ रहा था। वह उसके घोंसले को तोड़ने के लिए दौड़ा। बया ने इस बार एक बहुत ही पतली टहनी पर अपना घोंसला लटकाया था। बंदर क्रोध में कूदता हुआ लपका और जैसे ही घोंसला पकड़ने के लिए झपटा कि टहनी टूट गई। बंदर धड़ाम से नीचे आ गिरा। वह बुरी तरह लहू-लुहान हो गया था और कुछ ही पलों में उसने दम तोड़ दिया। बया ने चैन की सांस ली और बोला – "अब कभी बंदर को सीख नहीं दूंगा।"

नंदन, जुलाई, 1972

बेगुनाह पेड़ों की हत्या

एक लकड़हारा था। दिनभर लकड़ियां काटता। फिर भी भरपेट खाने के लिए पैसे नहीं मिलते। यह सोचकर वह बहुत दुखी होता। कोई दूसरा धंधा भी न कर पाता। वह यही सोचता कि मुझसे अच्छे तो मेरे परदादा ही थे। उन्हें जलदेवता ने चांदी और सोने की कुल्हाड़ियां दी थीं।

यह कहानी याद आते ही लकड़हारे ने सोचा कि क्यों न जलदेवता के पास चलूं। शायद वह मेरा भी दुख दूर कर दें। बस, उसने कुल्हाड़ी उठाई और सीधा नदी के किनारे पहुंचा। उसने अपनी कुल्हाड़ी नदी में फेंक दी। कुछ ही क्षणों में जलदेवता उसकी कुल्हाड़ी लिए आ गए।
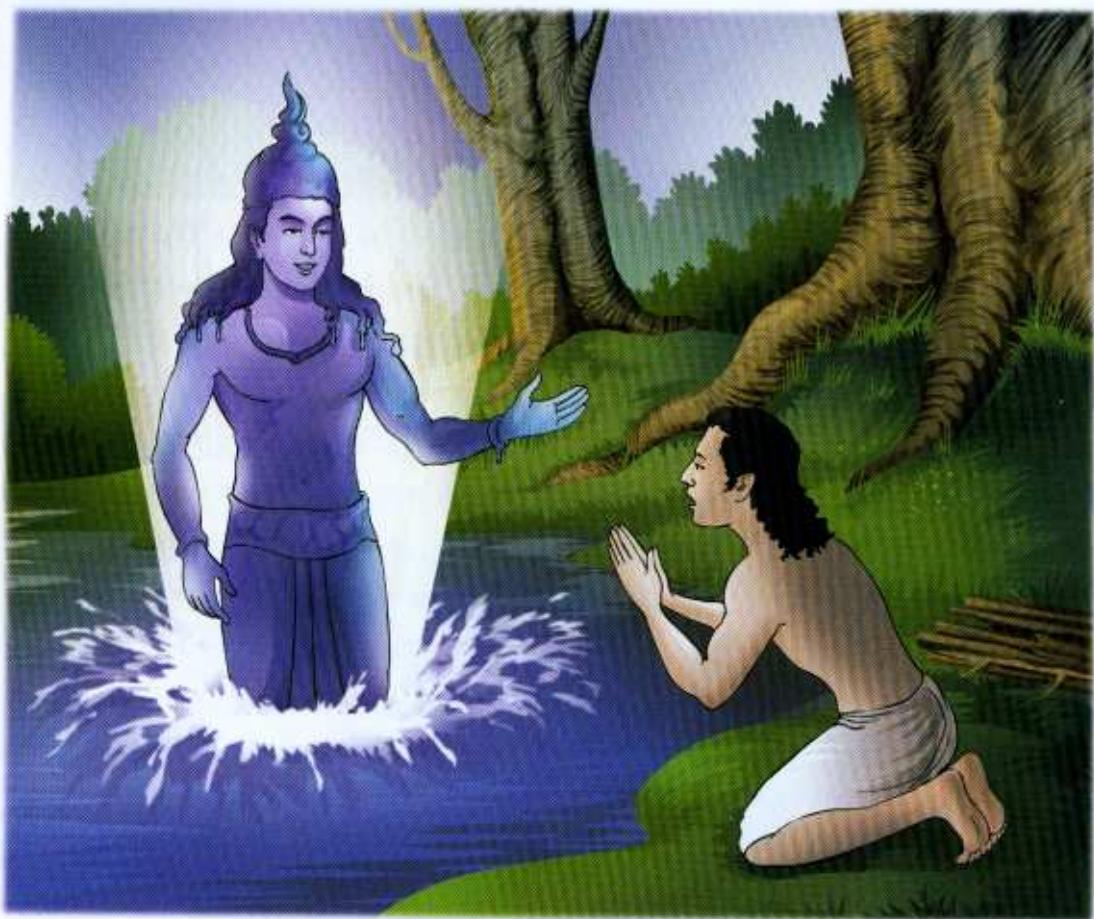
''यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है?''

''जी हां!''

'जानबूझकर क्यों फेंकी?''

''आपको बुलाने के लिए।'' लकड़हारा बोला, ''आपको याद होगा, सैकड़ों साल पहले एक लकड़हारे की कुल्हाड़ी नदी में गिर गई थी। आपने उसे पहले चांदी की, फिर सोने की कुल्हाड़ियां दिखाई थीं। लेकिन वह अपनी लोहे की कुल्हाड़ी ही मांगता रहा। आपने खुश होकर तीनों कुल्हाड़ियां उसे दे दी थीं।''

''हां, याद है।'' जलदेवता ने कहा, ''और यह भी नहीं भूला हूं कि उसके बाद एक और लकड़हारा आया था। उसकी तो लोहे की कुल्हाड़ी भी मैंने वापस न की।''

''लेकिन मैं आपको धोखा देने नहीं आया हूं। आपकी कृपा का फल प्राप्त करने आया हूं। मैं सचमुच दुखी हूं।'' लकड़हारे ने कहा।

जलदेवता ने लकड़हारे की कुल्हाड़ी को ध्यान से देखा। ''काफी वजनी और तेज धार वाली कुल्हाड़ी है।''

''जी हां, कई पीढ़ियों से मेरे घर में लकड़ी काटने का काम इसी से होता रहा है।'' लकड़हारे ने कहा।

''और कई पीढ़ियों से तुम एक ऐसा काम करते रहे हो, जिससे पूरे मानव समाज के लिए खतरा पैदा हो रहा है।'' जलदेवता की यह बात सुनकर लकड़हारा आश्चर्य में पड़ गया। वह पूछ बैठा, ''जलदेवता, हम जो लकड़ियां काटकर ले जाते हैं, उनसे मनुष्य खाना पकाता है और उसे खाकर ही वह जीवित रहता है। फिर भला हमने उसे नुकसान कैसे पहुंचाया? भला उसके लिए क्या खतरा पैदा हो गया है?''

''तुमने बिना बोए ही फसल काट ली, यही तुम्हारा अपराध है। तुमने जब पेड़ लगाए नहीं तो उन्हें काटने का हक तुम्हें नहीं है।''

''लेकिन पेड़ लगाना मेरा काम नहीं है।'' लकड़हारे ने कहा।

''मुझे तो यही अफसोस है कि तुम्हारे पूर्वज को मैंने चांदी-सोने की कुल्हाड़ी के साथ, उसकी लोहे वाली कुल्हाड़ी भी लौटा दी थी। मैं सोचता था कि चांदी-सोने पाकर वह लकड़ी काटना छोड़ देगा। किंतु मेरा अनुमान गलत निकला। सच पूछो तो तुम्हारी पूरी पीढ़ी पर 'बेगुनाह पेड़ों की हत्या' का मुकदमा चलाना चाहिए। पेड़ों में भी जीवन होता है, तुम उस हत्या के अपराधी हो।''

''क्या कह रहे हैं आप?'' घबराहट और आश्चर्य से आंखें फाड़े हुए लकड़हारे ने कहा। उसके

हाथ से छूटकर गिरी हुई कुल्हाड़ी को जलदेवता ने उठा लिया और बोले, ''पेड़-पौधे भी हमारी-तुम्हारी तरह जीवधारी हैं। वे भी सांस लेते हैं, खाते-पीते हैं, सोते-जागते हैं, फिर भला इस तरह उनकी हत्या करना पाप नहीं है?''

लकड़हारा एक क्षण के लिए मौन हो गया। फिर बोला, ''अगर जंगल के पेड़ काटे न गए तो सब जगह जंगल फैल जाएगा। और तब...''

''...और अगर सिर्फ जंगल काटने का ही काम होता रहा तो जानते हो क्या होगा...पानी बरसना बंद हो जाएगा। जमीन रेतीली और बंजर हो जाएगी, खेती नहीं होगी, लोग भूखों मरने लगेंगे। सोचो, तब कितनी भयानक हालत होगी।''

''तो फिर लकड़ी की जरूरत कैसे पूरी होगी? क्या जंगल का एक भी पेड़ न काटूं?''

''अगर तुम जंगलों को काटते ही रहे तो इमारती और जलाऊ लकड़ी नहीं मिलेगी, जंगलों से मिलने वाली अन्य वस्तुएं – जैसे लाख, तेंदू के पत्ते, आदि नहीं मिलेंगे। इसलिए लकड़ी की जरूरत पूरी करने के लिए सूखे और बेकार पेड़ों को काट लो। परंतु उनके बदले नए पेड़ भी

लगाओ। आज बहुत-सी भूमि ऐसी है, जिसके बंजर बनने का खतरा पैदा हो गया है। क्योंकि उसके आस-पास का जंगल कट चुका है। यह सब तुम्हारे पूर्वजों की कृपा का ही फल है।''

''ठीक है, मैं उनके कार्यों का प्रायश्चित करूंगा। मैं इन वनों की रक्षा करूंगा। यही मेरा प्रायश्चित होगा। आप मेरी कुल्हाड़ी जल में फेंक दीजिए।''

जलदेवता वह कुल्हाड़ी लेकर नदी में डूब गए। लकड़हारा खुश था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके पूर्वजों के पापों का बोझ उसके सिर से उतर गया हो। वह घर जाने के लिए मुड़ा ही था कि अचानक आवाज आई, 'रुको!'

लकड़हारे ने मुड़कर देखा – जलदेवता सामने खड़े थे। उनके हाथों में सोने और चांदी की कुल्हाड़ियां थीं। बोले – ''ये लो, इन्हें बेचकर अपनी रोजी चलाने का साधन खोज लेना। इस बार मैं लोहे की कुल्हाड़ी देने की गलती नहीं करूंगा।''

लकड़हारा खुश था। वह बोला, ''लोहे की कुल्हाड़ी मैं स्वयं भी नहीं लेना चाहता, वरना मेरा प्रायश्चित पूरा नहीं होगा। मैं बेगुनाह पेड़ों का हत्यारा जो हूं।

जलदेवता वापस चले गए। लकड़हारा पेड़ों का रक्षक बन गया था।

पराग (1974)

दीनू काका

"दीनू काका, तुम्हारा घर कहां हैं?" यह प्रश्न शशिन दीनू काका से पिछले दस साल से पूछ रहा है। दीनू काका हैं कि उत्तर में मुसकरा देते हैं और कहते हैं, "यही तो है मेरा घर।" "तो फिर घर का सारा काम तुम्हीं क्यों करते हो? मां तुम्हें सबसे बाद में खाना क्यों देती हैं? सबके लिए अच्छे-अच्छे कपड़े आते हैं, पर तुम्हारे लिए कुछ नहीं आता?"

अब दीनू काका इन प्रश्नों का भला क्या जवाब देते। वह सिर्फ मुसकराते रहते।

शशिन को दीनू काका ने गोद में खिलाया है। अब वह बड़ा हो रहा है। धीरे-धीरे घर और लोगों के आपसी रिश्तों को समझने लगा है। उसे लगता है, इस घर में सबसे ज्यादा दया के पात्र दीनू काका ही हैं। वह मां से भी कई बार पूछ चुका है – "क्या दीनू काका सचमुच ही हमारे काका हैं? दीनू काका के बच्चे कहां हैं?" और मां झुंझलाकर कह देती हैं – "जाओ, दीनू काका का ही सिर खाओ! मुझे कुछ नहीं मालूम।"

शशिन के लिए दीनू काका अजीब पहेली बन जाते हैं। वह सोचता – 'अगर दीनू काका का हमसे कोई रिश्ता नहीं है तो वह मुझे क्यों इतना प्यार करते हैं?'

एक दिन सब लोग खाना खा चुके थे। शशिन रसोईघर में खड़ा था। मां दीनू काका के लिए खाना लगा रही थीं। उनकी थाली में मां ने जूठी थालियों की दाल और सब्जी भी मिला दी थी। शशिन बोला, "मां, तुम दीनू काका को जूठा खाना देती हो!" मां को शायद पता न था कि शशिन पास ही खड़ा है। वह कुछ इस तरह चौंक पडीं जैसे कोई चोर चोरी करते पकड़ा गया हो। दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने को संभाल लिया। आंखें तरेर कर बोलीं, "तू यहां क्या कर रहा है? खाना खा चुका, फिर भी लालची की तरह खड़ा है। भाग यहां से..."

उस दिन शशिन दोपहर में दीनू काका को घेरकर बैठ गया। बोला – "दीनू काका, आज तो तुम्हें बताना ही पड़ेगा कि तुम्हारा घर कहां है? अगर तुम मेरी बात का जवाब नहीं दोगे तो मैं हड़ताल करूंगा।"

अब तक शशिन की बड़ी बहन रश्मि भी आ गई थी। दीनू काका को कुछ सुनाने के मूड में देखकर वह भी बैठ गई। दीनू काका बोले – "बेटा, मेरा घर होकर भी मेरा नहीं रहा। वह जो
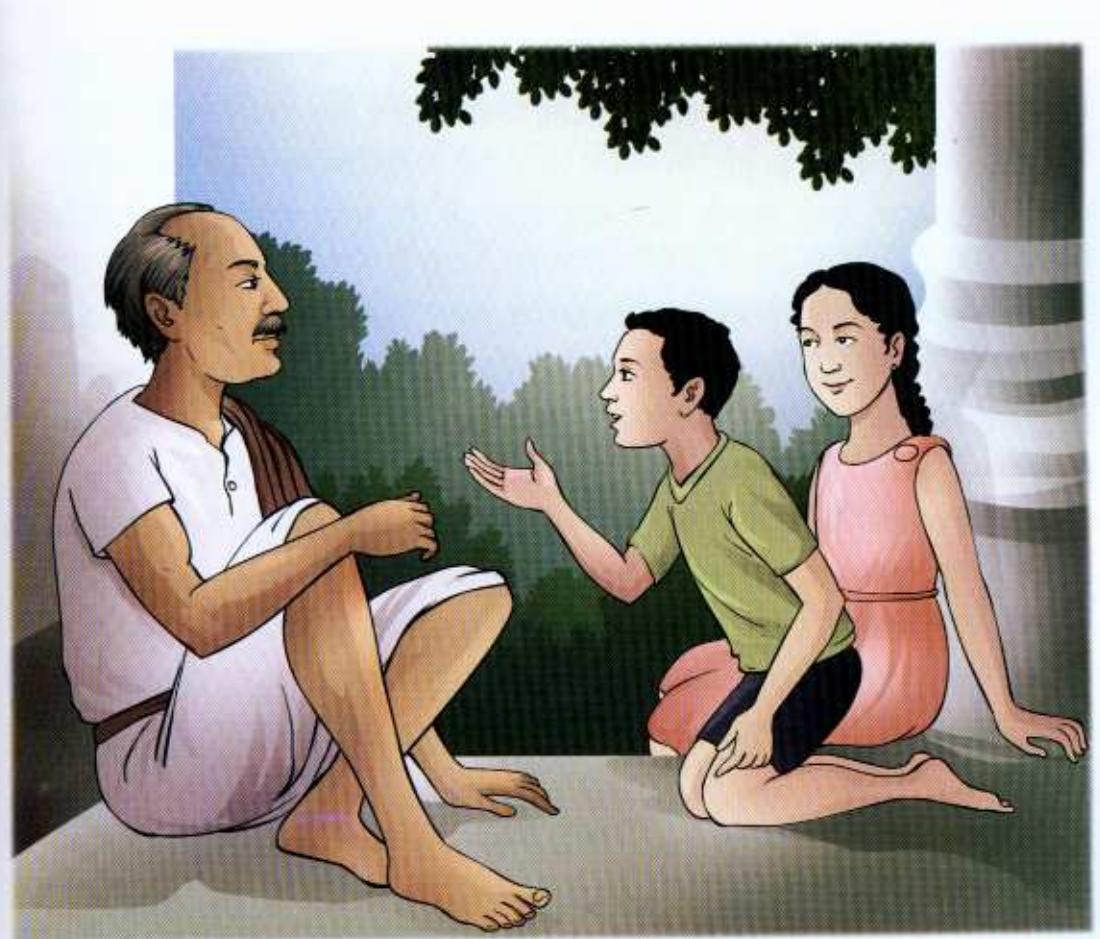
आम का बगीचा है, उसके पास जो खेत हैं, वे दोनों कभी मेरे ही थे। वहीं मेरा घर था। लेकिन लगातार दो साल पानी नहीं बरसा। सब ओर सूखा पड़ गया। पहले बैल बिके, फिर तुम्हारे पापा जी के पास बगीचा गिरवी रखा। इस बीच मेरी घरवाली बीमार पड़ गई। कर्ज फिर लेना पड़ा। अब की बार खेत गिरवी रख दिया। जब कुछ हाथ में न रहा तो कर्ज का ब्याज कहां से चुकाता। मजबूर होकर तुम्हारे घर में मजदूरी करनी पड़ी। दस साल हो गए हैं। रात-दिन मजदूरी करता हूं। मेरी घरवाली, मेरे बच्चे मजदूरी करके पेट भरते हैं। घास और पत्तों की बनी झोंपड़ी में रहते हैं। जब मौका मिलता है, चुपचाप उनको देख आता हूं। गुलामी की इस जिंदगी ने उनको भी पराया बना दिया है। अब तो लगता है, एक दिन ऐसी ही जिंदगी बिताते-बिताते प्राण निकल जाएंगे।''

दीनू काका की आंखें भर आई थीं। शशिन और रश्मि उदास हो गए। वे सोचने लगे, अगर उनके पास रुपये होते तो वे उन्हें देकर दीनू काका को गुलामी की जिंदगी से छुट्टी दिला देते।

शशिन और रश्मि ने एक दिन अपने मित्र राजन से दीनू काका के दुख की बात बताई। राजन बोला, ''यार, डैडी कहते थे कि अब कोई आदमी, किसी को इस तरह गुलाम बनाकर मजदूरी नहीं करा सकता। ऐसा करना कानूनी जुर्म है और हां, गरीबों के कर्जे भी माफ कर दिए गए हैं।''

''यह तो बहुत अच्छी बात है। क्या दीनू काका भी छूट सकते हैं?'' रश्मि और शशिन ने पूछा।

''डैडी इतवार को आ रहे हैं। उन्हीं से पूछ लेना।''

शशिन और रश्मि इतवार की प्रतीक्षा करने लगे। राजन के डैडी शहर में वकालत करते हैं। हर इतवार को गांव आते हैं। इस बार जब वह आए तो शशिन और रश्मि को बड़ी बेचैनी से इंतजार करते पाया। उन्होंने पूछा, ''क्या बात है रश्मि, जमींदार साहब ठीक हैं?''

''जी हां चाचाजी, पापा बिलकुल ठीक हैं। दरअसल हम कुछ परेशानी में हैं।'' रश्मि ने कहा।

''क्या हुआ? बताओ न?'' वकील साहब ने पूछा।

रश्मि और शशिन ने अपने-अपने ढंग से दीनू काका की दुखभरी कहानी सुना दी।

''इसमें भला परेशानी की क्या बात है? अब तो कानून बन गया है। जो इस कानून को नहीं मानेगा उसे सजा मिलेगी। इसलिए मैं आज जमींदार साहब से इस बारे में बात करूंगा।'' वकील साहब बोले।

शाम को पापा वकील साहब के पास गए। वकील साहब का मुंशी उन्हें बुलाने आया था। शशिन और रश्मि डरे हुए थे। पता नहीं, इस बात से पापा नाराज होंगे या खुश होंगे। रात होते ही दोनों सो गए। सवेरे उठे तो देखा कि पापा उनसे भी पहले उठकर कहीं चले गए हैं। मां ने बताया कि कचहरी गए हैं। दोनों बच्चों के मन में कल की बात जानने की बड़ी उत्सुकता थी। वे सीधे वकील साहब से मिलने भागे। वकील साहब वापस शहर जाने के लिए तैयार थे। दोनों को देखते ही बोले, ''मैं तुम दोनों का इंतजार कर रहा था। जाओ, दीनू काका को आजाद कर दो।''

''सच, चाचाजी!'' रश्मि और शशिन ने एक स्वर से पूछा।

''हां...हां...दीनू काका को आजाद कर दो।''

''लेकिन पापाजी...?'' रश्मि ने धीमी आवाज से पूछा।

''उनकी फिक्र मत करो।'' और वकील साहब की मोटरसाइकिल घर-घर कर उठी। वह शहर की ओर चले गए।

अब तक राजन, बिल्लू, कल्लू, श्याम और चुन्नू भी आ गए थे। रश्मि और शशिन ने उनको भी दीनू काका की कहानी सुना दी।

सबने मिलकर तय किया कि रहीम चाचा का तांगा उधार मांग लिया जाए। उसे फूल-पत्तियों से सजाकर दीनू काका को उस पर बिठाया जाए। फिर जोरदार जुलूस निकले। रहीम चाचा बड़े ही नेक आदमी थे। बच्चों की बात कभी न टालते। उन्होंने खुशी से तांगा दे दिया। कुछ ही देर में तांगा सजा दिया गया।

'दीनू काका की जय' का नारा लगाते हुए बच्चे शशिन के घर पहुंचे। दीनू काका ने यह नाटक देखा तो हंसने लगे। सोचा – 'बच्चे कोई खेल खेल रहे होंगे।' लेकिन जब बच्चों ने कहा कि अब आप आजाद हैं और तांगे पर बैठिए तो दीनू काका घबरा गए। बोले – "मुझे खुशी है कि तुम लोग मेरी भलाई की बात सोचते हो। लेकिन मैं जमींदार साहब के हुक्म के खिलाफ कोई काम नहीं करूंगा।"

"कैसी बातें कर रहे हो काका? हमने वकील चाचा से भी पूछ लिया है। वह भी कहते थे कि नए कानून के अनुसार दीनू काका के सब कर्जे माफ हैं और वह आजाद हैं।" रश्मि ने कहा।

"और रश्मि बिटिया, तुम्हें जमींदार साहब की मार भी याद है न?" दीनू काका ने पूछा।

"कुछ भी हो काका। हम तुम्हें आज आजाद करके रहेंगे।" शशिन और उसके दोस्तों ने कहा, "देखते क्या हो? दीनू काका को पकड़कर तांगे पर बैठा दो।" सब बच्चों ने दीनू काका को घेर लिया और उठाकर तांगे पर बैठा दिया। जुलूस चल पड़ा।

दीनू काका बहुत परेशान थे। बच्चों से लड़ नहीं सकते थे। जमींदार से बेहद डर रहे थे। धीरे-धीरे जुलूस गांव की गलियों से घूमता हुआ बाजार में पहुंचा। दोपहर हो चुकी थी। किंतु बच्चों का उत्साह कम नहीं हुआ था। वे नारे लगा रहे थे – 'दीनू काका आजाद हैं।'

अचानक नारे बंद हो गए। सबके चेहरे पर घबराहट के भाव उभर आए। सामने से जमींदार साहब चले आ रहे थे। अब क्या होगा? उनकी मार के डर से शशिन और रश्मि ही नहीं, राजन, चुन्नू, कल्लू – सभी सिहर उठे। इस दृश्य को देखकर वह क्या करेंगे, किसी को मालूम नहीं था। उन्हें देखकर बच्चे चाहते तो भाग सकते थे, लेकिन तब लोग क्या कहेंगे कि सब के सब कायर निकले। वे जैसे-जैसे आगे आते जा रहे थे, बच्चों की घबराहट बढ़ती जा रही थी। दीनू अजीब परेशानी में फंस गया था। नजदीक आते ही जमींदार साहब दहाड़े – "ये नारे बंद क्यों हो गए? लगाओ नारे!" और दीनू काका घबराकर तांगे से कूद पड़े। इससे पहले कि वह भागें, जमींदार साहब ने उन्हें पकड़ लिया। दीनू काका उनके पैरों पर गिर पड़े। बोले – "मेरा कुसूर नहीं है। मैं बच्चों के बहकावे में आ गया था।"
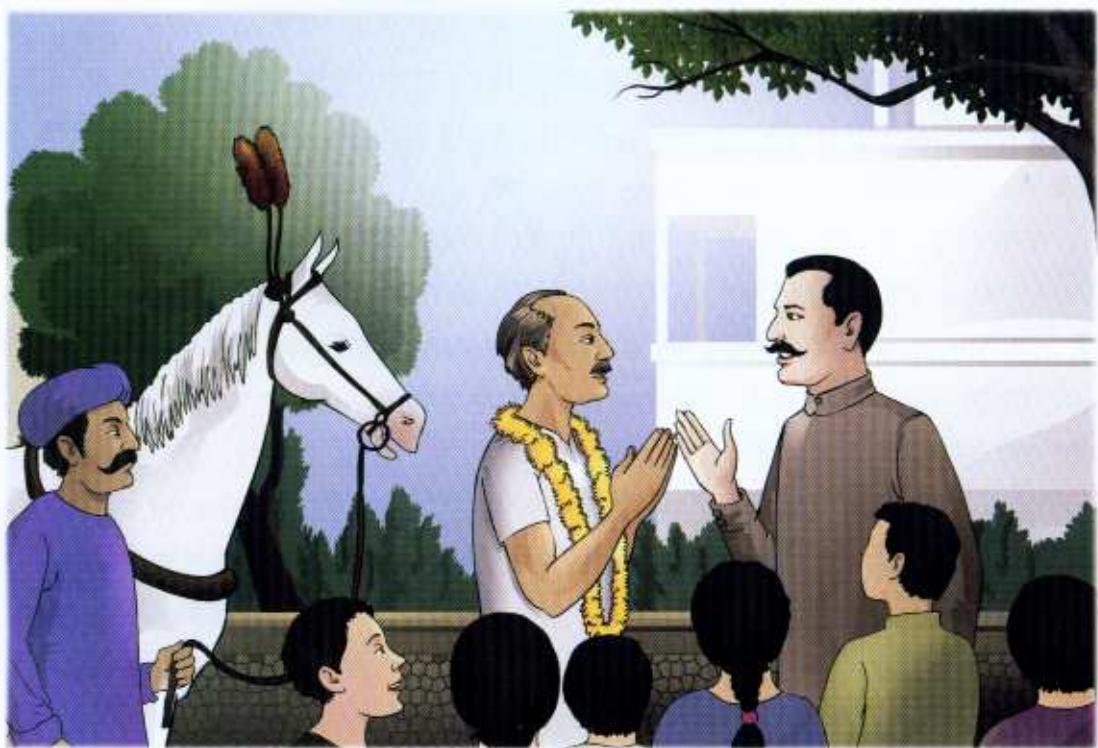
"कोई बात नहीं दीनू।" जमींदार साहब बोले, "मुझे खुशी है कि अपने बच्चे अब देश और समाज की हालत को समझने लगे हैं।" फिर उन्होंने झोले से कुछ कागज निकाले और बोले, "यह लो, तुम्हारे खेत और बगीचे के कागजात। मैं तहसील जाकर सारे कागजात ठीक करा लाया हूं। अब यह बाग और खेत तुम्हारे ही रहेंगे। तुम्हारी सेवा ने कर्ज का सारा रुपया अदा कर दिया है।" बच्चों ने इस बार स्वर बुलंद करके नारा लगाया, "दीनू काका आजाद हैं!"

पराग, जुलाई, 1977

घुन

स्कूल की कैंटीन में आज फिर झगड़ा होते-होते बचा। सुनील पेस्ट्री खरीदकर खा ही रहा था कि वीरू ने व्यंग्य किया, "खाओ प्यारे, खूब खाओ! रिश्वत का पैसा है न! उड़ाओ, मजे से उड़ाओ!"

यह सुनकर सुनील का चेहरा गुस्से से तमतमा गया।

वैसे आज कोई नई बात नहीं हुई थी। सुनील को अक्सर ही ऐसी बातें सुनने को मिलती हैं। लेकिन वह ऐसी बातों को अब तक जहर के घूंट की तरह पीता आया है। सोचता था कि लोग यों ही बकते होंगे! व्यर्थ ही दोस्तों से झगड़ा नहीं करना चाहिए। लेकिन अपने पिता के लिए इस

तरह की अपमानजनक बातें सुनते ही वह मिलमिला उठता था। वह जानता है कि उसके पिता एक नेक और ईमानदार आदमी हैं। मुहल्ले के लोगों की नजरों में सूरज नाथ सक्सेना का बहुत आदर है। अब अगर वह बिक्री कर अधिकारी हैं तो इससे क्या? क्या यह जरूरी है कि वह रिश्वत लेते ही हों?

उसी शाम को घर लौटते समय भी वीरू ने कुछ ऐसी ही बकवास की थी। सुनील बेहद झुंझलाया हुआ था। उसने घर पहुंचते ही किताबें एक ओर पटक दीं और सीधा मां के सामने प्रश्न-चिह्न-सा खड़ा हो गया।

''क्या हुआ? ऐसे क्यों देख रहा है?'' मां ने डपटकर पूछा।

''मां! क्या पिताजी रिश्वत लेते हैं?'' सुनील ने साहस करके पूछ ही लिया।

उत्तर में उसके गाल पर एक चांटा पड़ा। उसका गाल और कान गरम हो गए। किंतु उत्तर खोजने की चाह और बढ़ गई। वह अपने कमरे में चुपचाप चला आया। उसने सुना मां कह रही थीं, ''शर्म नहीं आती, पिता के बारे में ऐसी बातें पूछते हुए?''

सुनील अब और अधिक परेशान था। पिताजी के बारे में एकदम ऐसी बात पूछकर उसने अच्छा नहीं किया। आखिर उसके पास इस बात का क्या सबूत है कि पिताजी रिश्वत लेते हैं? लोगों का क्या है, दूसरों को खुश देखकर सब जलते हैं!

कुछ देर बाद सक्सेना साहब रोज की तरह दफ्तर से लौटे और स्कूटर की डिक्की से सामान निकालने लगे।

सुनील ने सुना, मां पिताजी से कह रही थीं , ''आज आपका बेटा आपको रिश्वतखोर कह रहा था। मुहल्ले वाले तो सोचते ही हैं कि सेल्स टैक्स आफीसर हैं, जरूर रिश्वत लेते होंगे। अब आपका बेटा भी पूछता है, क्या पिताजी सचमुच रिश्वत लेते हैं?''

''अब बस भी करो! किसी के कह देने से ही तो मैं रिश्वतखोर नहीं हो गया। जो कहता है, वह सबूत दे कि मैंने रिश्वत ली है!''

'सबूत होना चाहिए!' ये तीन शब्द सुनील के दिमाग में बिजली की तरह कौंध गए। पिताजी दोषी हैं या निर्दोष – दोनों बातों के लिए वह सबूत खोजेगा।

''पिताजी, मैंने एक कहानी लिखी है। आप पढ़ लें। अच्छी हो तो छपने के लिए भेज दूंगा।'' सुनील ने अगली शाम पिताजी के हाथों में कुछ कागज दे दिए। सक्सेना साहब कहानी पढ़ने लगे। सुनील पास ही बैठ गया। कहानी इस तरह थी...

कमरे में अंधेरा है। मैं अकेला बैठा हूं। अचानक कॉल बेल बजती है। मां दरवाजा खोलती हैं, आकर पिताजी को बताती हैं, ''इंपीरियल रबर कंपनी का आदमी आया है।'' पिताजी ड्राइंग रूम में जाते हैं। रबर कंपनी के आदमी ने कुछ फाइलें निकाली और बातचीत शुरू कर दी।

मैं जानता हूं कि पिताजी का आदेश क्या है? यही न कि जब बाहर का कोई आदमी आए तो बिना बुलाए ड्राइंग रूम में कोई न आए। आज मैं एकदम अपने से पूछता हूं – ऐसा क्यों है? क्या पिताजी उस समय चोरी से कोई काम करते हैं? यदि नहीं, तो फिर...? और मैं दबे पांव ड्राइंग रूम की तरफ बढ़ता हूं। दरवाजे तक पहुंचते ही एक दृश्य देखता हूं। पिताजी की पीठ मेरी ओर है। वह बाएं हाथ से एक फाइल उस आदमी को दे रहे हैं और दाहिने हाथ से सौ-सौ के कुछ नोट ले रहे हैं।

वह आदमी मुसकरा रहा है। मैं नहीं जानता कि उस समय पिताजी का चेहरा कैसा था। मैं दबे पांव वापस आ जाता हूं। कमरे की बत्ती जला देता हूं।

तभी ड्राइंग रूम के दरवाजे बंद हो जाते हैं। पिताजी मां के पास आकर कहते हैं, ''लो, कल तुम्हारे लिए नया प्रेशर कुकर आ जाएगा।'' पिताजी और मां को शायद पता नहीं है कि मैं उन्हें

देख रहा हूं और उनकी बात भी सुन रहा हूं। मां के चेहरे का रंग उतर जाता है। वह रुपये लेते हुए कुछ कहना चाहती हैं। शायद पिताजी को सावधान करना चाहती हैं। परंतु पिताजी उनकी बात समझकर हंसते हुए चले जाते हैं, ''अरे छोड़ो भी! बच्चे हैं, अभी इन बातों को क्या समझें!'' मैं तिलमिला उठता हूं। जी चाहता है कि जोर-जोर से चीखकर कहूं कि 'मैं सब समझता हूं। मुझे यह सब नहीं चाहिए!'

रात को खाना खाते समय मां कह रही थीं, ''देखिए जी, अपना प्रेशर कुकर एकदम पुराना हो गया है। किसी से कुछ रुपये उधार लेकर एक नया ले आइए।'' पिताजी कहते हैं, ''ठीक है।''

नाटक की असलियत को समझकर भी मैं चुपचाप खाना खाता रहता हूं।

अगले दिन नया प्रेशर कुकर आ जाता है। एक बार जी चाहता है कि विश्वास कर लूं– पिताजी ने वे रुपये उधार ही लिए होंगे। मां ने नहीं चाहा होगा कि वह उधार लें। किंतु दूसरे ही क्षण खाने की मेज पर किया गया उनका नाटक मुझे फिर परेशान कर देता है।

मैं नहीं समझ पा रहा हूं कि पिताजी अनैतिक रूप से क्यों धन कमाना चाहते हैं? उनके इस कार्य की सजा मैं अभी से भोग रहा हूं। स्कूल में, मुहल्ले में, बाजार में मुझे हर वक्त यही लगता कि लोग उंगली उठाकर कह रहे हैं, 'वह देखो! रिश्वतखोर बाप का बेटा जा रहा है।' बड़ा होकर भी क्या मैं इस कलंक को माथे से धो सकूंगा? मेरे मन की यह पीड़ा कौन समझ सकता है? क्या मैं अपने पिताजी से ही यह आशा कर सकता हूं कि मुझे इस तरह कलंकित होने से बचा लें? क्या वह पसंद करेंगे कि उनकी वजह से उनका बेटा अपमानित हो? मेरी यह व्यथा, उन तमाम बच्चों की जैसी ही है जिनके पिता चोरी, तस्करी, जूआ, शराब जैसे कुकर्मों में लगे हैं। इसीलिए कभी-कभी मैं अपने को घुन की तरह पाता हूं जो गेहूं के साथ अकारण ही पिस जाता है।''

कहानी पढ़ते-पढ़ते सक्सेना साहब की आंखों से आंसू बह चले थे। उन्होंने सुनील को पास बुलाया और सीने से लगा लिया।

बाद में सक्सेना साहब ने कहानी को प्रकाशित कराने की अनुमति दे दी, क्योंकि उन्होंने उसे भी प्रायश्चित का एक अच्छा तरीका माना था।

पराग, जनवरी, 1982

पुरस्कार

इसके बाद उस कार्यक्रम की घोषणा हुई, जिसका सभी को बहुत देर से इंतजार था। स्कूल के वार्षिकोत्सव के अवसर पर रंगारंग कार्यक्रमों का आयोजन किया गया था। इसमें गीत, नृत्य, लघुनाटिकाएं भी शामिल थे। मुख्य अतिथि के रूप में स्थानीय विधायक सेवाराम जी दर्शकों की पहली पंक्ति में विराजमान थे। उनके साथ स्कूल की प्रिंसिपल श्रीमती टंडन बैठी थीं।

मंच के पीछे से जब उद्घोषणा हुई कि अब कुमारी पूजा शर्मा का नृत्य प्रस्तुत किया जाएगा, तो दर्शकों के साथ-साथ स्टाफ भी खुशी से उत्सुक हो उठा। दर्शकों में बैठे पूजा के मम्मी-पापा को उनके परिचित लोग देखकर मुसकरा उठे। पूजा ने यों तो आठ वर्ष की आयु से ही मंच पर नृत्य करना शुरू कर दिया था लेकिन बारहवीं कक्षा की पूजा ने अपने स्कूल को अंतर्विद्यालयी और जिला व संभागीय प्रतियोगिताओं में पुरस्कार दिलवाकर जो गौरव दिया था, इससे सभी उसके प्रशंसक बन गए थे।

प्रिंसिपल श्रीमती टंडन ने उद्घोषणा के तुरंत बाद मुख्य अतिथि सेवाराम जी को पूजा के बारे में बताना शुरू कर दिया था, "सर, पूजा हमारे स्कूल का गौरव है। पूजा को नृत्यकला की बारीकियों की अद्भुत समझ है। कई अखबारों में इसके फोटो छप चुके हैं।" श्रीमती टंडन की बात सेवाराम जी बड़ी गंभीरता से सुन रहे थे। वह अभी और भी कुछ बताना चाह रही थीं, जैसे कि पूजा को कई कप-ट्रॉफी और प्रमाण-पत्र आदि मिल चुके हैं, पर उन्हें चुप होना पड़ा क्योंकि मंच पर परदा हट चुका था। पूजा अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए आ चुकी थी। फिर भी श्रीमती टंडन ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा, "लीजिए, हाथ कंगन को आरसी क्या? अब पूजा शर्मा की कला आप स्वयं देख लीजिए।"

पूजा का नृत्य शुरू हुआ। इस बाल कलाकार ने पूरे पंद्रह मिनट तक नृत्य किया। पंडाल में बैठे दर्शक उसे स्तब्ध होकर देखते रहे। पूजा का नृत्य समाप्त हुआ तो पूरे पांच मिनट तक तालियों की गड़गड़ाहट से सारा पंडाल गूंजता रहा। पूजा झुक-झुककर सबका अभिवादन कर रही थी।

इसी बीच मुख्य अतिथि सेवाराम जी प्रिंसिपल मैडम के साथ उठकर मंच पर आ गए। पूजा ने उन्हें प्रणाम किया और सेवाराम जी ने पूजा के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। तालियां अब भी बज रही थीं। सेवाराम जी कुछ कहना चाह रहे थे। प्रिंसिपल मैडम ने हाथ उठाकर दर्शकों को शांत रहने के लिए कहा। तालियां बंद हुईं। सेवाराम जी ने मंच पर रखा माइक संभाल लिया और बोले, "पूजा बिटिया के नृत्य की जितनी प्रशंसा की जाए, वह कम होगी। मैं पूजा शर्मा के लिए इक्कीस सौ रुपयों के पुरस्कार की घोषणा करता हूं।"

सेवाराम जी की घोषणा के उत्तर में एक बार फिर हॉल तालियों से गूंज उठा।

अब पूजा ने हाथ उठाकर दर्शकों को शांत किया और माइक पर आ गई। पूजा के धन्यवाद के दो शब्द सुनने के लिए सेवाराम जी प्रिंसिपल के साथ वहीं खड़े रहे।

पूजा ने कहा, "मैं जब पांच साल की थी, तब से नृत्य सीखने लगी थी। फिर जब आठ वर्ष की थी, तब मैंने स्टेज पर पहला प्रोग्राम दिया था। उन्हीं दिनों की बात है। एक प्रोग्राम में आज की ही तरह एक नेताजी मुख्य अतिथि के रूप में आए थे। उन्होंने भी स्टेज पर आकर इसी तरह एक सौ एक रुपयों के पुरस्कार की घोषणा की थी। उन्हें भी बदले में तालियां मिली थीं। उसके बाद कई दिन बीत गए। पुरस्कार के रुपये नहीं आए। मेरी सहेलियां, मेरे दोस्त अक्सर पूछते कि

तेरा ईनाम आया कि नहीं। यह भी कि उन रुपयों का क्या करेगी? अब उस आठ वर्ष की उम्र में मैं एक सौ एक रुपयों का भला क्या मूल्य समझती? आज सोचती हूं तो हंसी आती है कि इतने से रुपयों के लिए मैं परेशान थी जिन्हें मैं अपनी सहेलियों और परिचितों को दिखाकर खुश होना चाह रही थी। पुरस्कार कैसा भी हो, उसका महत्व आप सब जानते हैं।''

प्रिंसिपल टंडन मैडम के चेहरे से लग रहा था कि वह पूजा की इस कहानी से कुछ बोर हो रही थीं। जैसे मन ही मन कह रही हों कि आखिर पूजा कहना क्या चाहती है? धन्यवाद में इतना लंबा भाषण थोड़े ही दिया जाता है। विधायक जी का वक्त कीमती है, जो कुछ कहना है, जल्दी कहो। यह सोचकर उन्होंने पूजा को टोकना चाहा लेकिन सेवाराम जी ने उन्हें रोक दिया। वह पूजा की बात बड़ी रुचि और उत्सुकता से सुन रहे थे। उन्हें पूजा के मुख से इक्कीस सौ रुपयों के पुरस्कार के बदले 'धन्यवाद' भी तो सुनना था।

पूजा की बात जारी थी। वह कह रही थी, ''जब एक महीना बीत गया तो मैंने अपने पापा से कहा कि आप नेताजी के पास जाइए। पापा ने समझाया कि बड़े लोग हैं, फुरसत नहीं मिली होगी। याद आने पर पुरस्कार के पैसे भेज देंगे। इस तरह एक महीना और बीत गया। आखिर बार-बार कहने पर एक दिन पापा नेताजी के बंगले पर गए। उन्हें पुरस्कार की याद दिलाई तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि पापा इस छोटे से पुरस्कार का तगादा करने आए हैं। फिर उन्होंने कहा– वैसे मेरी पुरस्कार घोषणा के बाद जो ताली बजी थीं, वो क्या कुछ कम पुरस्कार थीं? फिर वह

'हें-हें' करके हंसते हुए बोले – शर्मा जी, बच्चों को रुपये-पैसों से क्या काम? उनके लिए तो प्रशंसा के दो शब्द ही बहुत होते हैं। खैर, आप आए हैं तो मैं जल्दी ही पुरस्कार के रुपये भिजवा दूंगा। निश्चिंत रहें।

"पापा ने नेताजी के यहां से लौटकर मम्मी से सारी बात बताई। पुरस्कार के रुपये न आने थे न फिर कभी आए। पर मेरा मन उदास हो गया था। लेकिन एक बात समझ में आ गई कि पुरस्कार के लिए की गई नेताओं की इस तरह की घोषणाओं पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। नेता मंच पर आकर संस्था के लिए, स्कूल के लिए बड़ी-बड़ी घोषणाएं कर जाते हैं, पर वे सब भी उनके अनेक वादों की तरह झूठी होती हैं।" इतना कहकर पूजा सेवाराम जी की ओर मुड़ी और बोली, "इसलिए महोदय, आपकी घोषणा के लिए धन्यवाद, पर मैं आपका पुरस्कार इसी समय अस्वीकार कर रही हूं।"

पूजा के इतना कहते ही पंडाल में एकदम सन्नाटा छा गया। प्रिंसिपल श्रीमती टंडन आश्चर्य से पूजा को देखने लगीं कि उसने यह क्या कह दिया। स्वयं सेवाराम जी को इसकी आशा न थी। वह भी कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि यह क्या हुआ? तभी किसी दर्शक ने ताली बजाई, फिर दूसरी ताली, फिर तीसरी...फिर क्षण भर में पूरा पंडाल तालियों से गूंज उठा। सेवाराम जी खिसियाए से कुछ झेंपते हुए और फिर भी हंसने की कोशिश करते हुए मंच से नीचे चले गए। वह कार्यक्रम में रुके नहीं। उनके पीछे-पीछे प्रिंसिपल उन्हें विदा करने गईं। तालियां अब भी बज रही थीं। धीरे-धीरे पूजा सबको प्रणाम कर मंच के पीछे चली गई।

प्रिंसिपल श्रीमती टंडन लौटकर मंच पर आईं और सबको शांत करते हुए बोलीं, "आपने अभी जो कुछ सुना और देखा, वह शायद कुछ लोगों को अच्छा लगा हो, लेकिन आपकी तालियों की गड़गड़ाहट से तो यही लगता है कि पूजा की बात को आप सबका समर्थन मिला है। लेकिन बात कलाकारों का उत्साह बढ़ाने के नाम पर जो झूठे पुरस्कारों की घोषणा करके वाहवाही लूटते हैं, आज की घटना से यह सबक जरूर लेंगे कि न तो वे बच्चों का दिल तोड़ें और न ही झूठे वादे करें। मैं पूजा शर्मा को, उसके इस साहसपूर्ण वक्तव्य के लिए शाबासी देना चाहती हूं। और हां, अंत में आपसे यह भी बता देना चाहती हूं कि जाते-जाते सेवाराम जी मुझे तो एक पुरस्कार दे ही गए हैं। उन्होंने कहा है कि मैं अपना बोरिया-बिस्तर बांध लूं, क्योंकि मैं यहां से अपना ट्रांसफर हुआ ही समझूं। पूजा का पुरस्कार आए न आए, पर मेरा पुरस्कार जल्दी ही आएगा और मैं उसका सहर्ष स्वागत करूंगी। आप सबको हमारा उत्साह बढ़ाने के लिए धन्यवाद।"

अमर उजाला, 2000

अवसर

मुख्य द्वार से लेकर पंडाल तक, स्कूल की सजावट ऐसी थी कि कोई भी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता था। सुभद्रा देवी का स्कूल के वार्षिकोत्सव में आगमन इसलिए महत्वपूर्ण था कि वह मंत्री भी थीं। मंत्री के रूप में उनका आना स्कूल के लिए बड़े गर्व की बात थी।

सुभद्रा देवी आईं और मुख्य द्वार में प्रवेश करने के बाद से उनके तेज कदमों की गति कम हो गई। वह स्कूल की दीवारों पर, रास्ते में जगह-जगह और फिर मंच पर लोककला की अद्‌भुत छटा देख रही थीं।

''किसने बनाए हैं ये चित्र? इस सजावट के लिए किसी कलाकार पर स्कूल का रुपया खर्च करने की क्या जरूरत थी?'' मंच पर कदम रखने से पहले ही ठिठककर सुभद्रा देवी ने प्रिंसिपल मिसेज चंद्रा से पूछा। ''न तो इन्हें किसी कलाकार ने बनाया है, न ही हमने इनके बनाने वाले पर रुपया खर्च किया है। हां, थोड़े से रुपयों में कुछ रंग जरूर मंगाए थे।'' प्रिंसिपल चंद्रा ने कहा।

''क्या मतलब?'' आश्चर्यचकित होते हुए सुभद्रा देवी ने पूछा, ''अगर किसी कलाकार ने नहीं बनाए हैं तो फिर किसने बनाए हैं?''

''हमारे ही विद्यालय की एक छात्रा कंचन ने।''

''आप सच बोल रही हैं? मुझे विश्वास नहीं होता! मुझे तो लगता है मुझे प्रसन्न करने के...''

''नहीं मैडम! ऐसा कहकर प्लीज कंचन का अपमान न कीजिए।'' सुभद्रा देवी को लगा कि वह शायद कुछ ज्यादा बोल गईं हैं। उन्होंने तत्काल अपने को संभाला – ''अरे, तब तो मैं कंचन से मिलना चाहूंगी। कहां है, वो?''

प्रिंसिपल चंद्रा ने तुरंत एक लड़की से कहा कि वह जल्दी से कंचन को बुला लाए।

पंडाल की अगली पंक्ति में बैठे लोग तो इस वार्तालाप को सुन रहे थे – किंतु पीछे बैठे लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि मंत्री महोदाय आईं और मंच पर चढ़ने से क्यों रुक गईं? लोग तरह-तरह की अटकलें लगाने लगे – कोई प्रिंसिपल के खिलाफ सोचने लगा, तो कोई स्कूल की मैनेजमेंट कमेटी के बारे में।

कंचन के आते ही सुभद्रा देवी ने पूछा – "क्या तुमने ये सारी चित्रकारी की हैं?"

"जी हां!"

"किस कक्षा में पढ़ती हो?"

"जी, दसवीं में पढ़ती हूं।"

"किससे सीखी है ये कला?"

"जी अपनी दादी से।"

"दादी से?"

"जी हां! वह हर त्योहार पर घर की दीवारों पर तरह-तरह की कहानियों के चित्र बनाकर सजाया करती थीं। मैं उनकी मदद किया करती थी। धीरे-धीरे मैं सीखती गई। फिर दादी को कम दिखने लगा तो वह मुझसे ही चित्र बनवाने लगीं और मुझे बताती जातीं कि अब क्या-कैसे बनाऊं? बस मैंने इस तरह चित्र बनाना सीख लिया।"

सुभद्रा देवी को विश्वास हो गया था कि कंचन सचमुच प्रतिभावान है। पंडाल में उपस्थित जनसमूह अधीर हो रहा है – यह श्रीमती चंद्रा भी देख रही थीं और सुभद्रा देवी भी। सुभद्रा देवी ने कंचन का कंधा थपथपाकर कहा – "तुम एक दिन जरूर बड़ी आर्टिस्ट बनोगी।"

वार्षिकोत्सव का कार्यक्रम संपन्न हुआ। सुभद्रा देवी चलने लगीं तो बोलीं – "मिसेज चंद्रा! दो महीने बाद मैं आनंदनगर में प्रादेशिक स्तर की 'हस्तकला कौशल प्रदर्शनी' लगवा रही हूं। मैं चाहती हूं कि उसमें कंचन के बनाए चित्रों को भी रखा जाए। आपके लिए एक स्टॉल मैं फ्री में दूंगी। क्या ये हो सकेगा?"

"क्यों नहीं हो सकेगा।" मिसेज चंद्रा ने कहा – "यह तो बड़ी खुशी की बात है।"

उधर कार्यक्रम समाप्त होते ही कंचन की सहेलियां ने उसे घेर लिया। "क्या कहा मंत्री महोदया ने? क्यों तेरा कंधा थपथपाया था उन्होंने?" जैसे सवाल वे पूछने लगीं। कंचन खुश थी कि उसे आज पूरे स्कूल के सामने आर्टिस्ट बनने का आशीर्वाद मिला। वह मन ही मन आर्टिस्ट बनने की कल्पना करने लगी थी।

अगले दिन मिसेज चंद्रा ने कंचन को बुलाया। उसे सुभद्रा देवी की इच्छा बताई।

"कंचन! कम-से-कम पचास चित्र तो बनाने होंगे। बाकी यहां जो बनाए थे वे रख देंगे।"

"ठीक है...कोशिश करूंगी!" कंचन ने धीमे स्वर में कहा। "कोशिश नहीं। ये काम तो होना ही है। मैंने मंत्री जी को वादा कर दिया है। फिर यह भी तो सोचो कि तुम्हारा कितना नाम होगा। तुम्हें एक पूरा स्टॉल अपने चित्र प्रदर्शित करने के लिए मिलेगा – वह भी फ्री।"

"जी!" कहकर कंचन चुपचाप चली आई। वह मन ही मन खुश भी थी, लेकिन चुनौती भी कुछ कम न थी। दो महीनों में इतने सारे चित्र कैसे बना सकूंगी।

शाम को घर आकर कंचन ने सारी बात अपनी मां को बताई। यह भी कि ड्राइंग पेपर के पचास-साठ शीट, बड़े आकार के चाहिए होंगे – साथ में रंग और ब्रुश भी। मां ने रात को कंचन की मांग पति नन्दकशोर बाबू से कही। कंचन दूसरे कमरे में दरवाजे के पास खड़ी उनकी बातें सुन रही थी। नन्दकिशोर बाबू बोले – "पागल हुई हो क्या? हमें अपनी बेटी को क्या आर्टिस्ट बनाना है? हुंह! उसे तो चौके चूल्हे का काम सिखाना शुरू करो। मेरे पास फालतू पैसा नहीं है जो इन कामों में बर्बाद करूं। दहेज की फिक्र ज्यादा है, मुझे।"

"लेकिन सुना है कि मंत्री सुभद्रा देवी खासतौर पर कहकर गई हैं कि कंचन के बनाए चित्र प्रदर्शनी में रखे जाएं।" मां ने कहा, "उन्होंने यह भी कहा कि कंचन एक दिन बड़ी आर्टिस्ट बनेगी।"

"देखो, कान खोलकर सुन लो। कंचन को आर्टिस्ट-वार्टिस्ट कुछ नहीं बनना है। मैं तो उसे बारहवीं से ज्यादा पढ़ाने वाला भी नहीं हूं। उसके बाद शादी कर दूंगा। बस, बेटी के बोझ से मुक्त हो जाऊंगा।"

कंचन ने यह सब सुना तो जैसे उसका सारा सपना टूट गया। वह सारी रात बिस्तर पर पड़ी सुबकती रही।

अगले दिन कंचन ने प्रिंसिपल मिसेज चंद्रा से सारी बात कह दी। उन्होंने कहा – "कोई बात नहीं। तुम्हारी जरूरत का सामान मैं मंगवाकर दूंगी। कल से तुम रोज लायब्रेरी पीरियड में चित्र बनाना शुरू करो।"

कंचन एक के बाद एक चित्र बनाने लगी। उसका हाथ इतना सधा हुआ था कि उसने प्रदर्शनी शुरू होने से पंद्रह दिन पहले ही सारे चित्र बना डाले। मिसेज चंद्रा ने वे सारे चित्र लेकर प्रदर्शनी में ले जाने की जिम्मेदारी स्कूल के अध्यापक राजीव शर्मा को सौंपी।

प्रदर्शनी के पहले दिन स्वयं मिसेज चंद्रा स्टॉल में उपस्थित थीं। वहां आने वाले लोगों ने कुछ चित्र खरीदने की इच्छा प्रकट की। मिसेज चंद्रा को लगा कि यह तो अच्छी बात है। बस उन्होंने तत्काल राजीव शर्मा के साथ सारे चित्रों के पीछे अनुमान से उनकी कीमत लिखवा दी। और वे चित्र बिकने लगे।

उस दिन शाम को नन्दकिशोर बाबू घर लौटे तो आते ही बोले – ''कंचन की मां! आज मैं कुछ काम से आनंदनगर गया था। जिला दफ्तर में कुछ काम था। वहां प्रदर्शनी लगी थी। आज आखिरी दिन था, तो मैं भी वहां चला गया। एक स्टॉल में हाथ से बनाए चित्र बिक रहे थे। मुझे याद आया कि आज तुम्हारा चौथ का व्रत है। अम्मा तो अब हैं नहीं जो पूजा के लिए चौथ का पट बना देतीं। सो मैं यह पट खरीद लाया।'' और यह कहकर उन्होंने वह चित्र लिफाफे से निकालकर दिखाया।

तभी वहां कंचन आ गई। उसने वह चित्र देखते हुए पूछा – ''बाबू जी! आप ये कहां से लाए हैं?''

''प्रदर्शनी से। पूरे पचास रुपये दिए हैं।''

इतना सुनते ही कंचन हंसने लगी। वह इतना हंसी कि अपने को रोक ही नहीं पा रही थी। उसकी हंसी देखकर मां और नन्दकिशोर दोनों कुछ समझ ही नहीं पा रहे थे। बड़ी मुश्किल से हंसी रोककर कंचन बोली – ''ये तो मेरा बनाया चित्र है। आप तो बस बन गए...'' और कंचन फिर हंसने लगी। नन्दकिशोर अभी भी नहीं समझ पा रहे थे कि बात क्या है! आखिर कंचन ने उन्हें सारी बात बता दी। तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। कंचन ने दरवाजा खोलकर देखा तो प्रिंसिपल मिसेज चंद्रा खड़ी थीं। उन्हें अचानक आया देखकर सभी चकित हुए।

नन्दकिशोर ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन्हें बैठाया। मिसेज चंद्रा ने कहा– ''आपकी बेटी बड़ी प्रतिभाशाली है। उसके बनाए चित्र प्रदर्शनी में खूब बिके। आज शाम वर्मा जी प्रदर्शनी से लौटे तो उन्होंने बताया कि चित्रों से साढ़े तीन हजार रुपयों की आमदनी हुई है।'' यह कहकर उन्होंने रुपयों से भरा लिफाफा कंचन के हाथ में रख दिया। फिर उन्होंने एक बड़े लिफाफे से प्रमाण-पत्र निकालकर देते हुए कहा – ''ये प्रमाण-पत्र कंचन के चित्रों की प्रशंसा के रूप में प्रदर्शनी के आयोजकों की ओर से दिया गया है।'' यह सब सुन-देखकर नन्दकिशोर चकित और कुछ शर्मिंदा से हो रहे थे।

इससे पहले कि मिसेज चंद्रा और कहें – नन्दकिशोर बाबू बोले – ''मुझे दुख है कि मैंने इसे चित्र बनाने का सामान लाने से मना कर दिया था।''

"लेकिन अब आप अगली गलती न कीजिएगा।" मिसेज चंद्रा ने कहा।

"वह क्या?" नन्दकिशोर ने आश्चर्य से पूछा।

"यही कि कंचन को आप आर्टिस्ट बनने का पूरा अवसर दीजिएगा। इसकी शादी की जल्दबाजी न कीजिएगा। इसे बारहवीं के बाद किसी 'कॉलेज ऑफ आर्ट' में उच्च शिक्षा दिलाइएगा। बोलिए – वादा करते हैं।"

"मैं वादा करता हूं कि कंचन को उच्च शिक्षा पाने का पूरा अवसर दूंगा। मुझे क्या पता था कि मेरी बेटी में इतनी प्रतिभा छिपी है।"

"इसे ही दिया तले अंधेरा कहते हैं।" हंसकर मिसेज चंद्रा बोलीं, "पर आप देखिएगा कि एक दिन कंचन सचमुच आर्टिस्ट बनकर आपका नाम रोशन करेगी।"

फिर जब कंचन ने बताया कि कैसे बाबूजी उसका ही चित्र खरीद लाए हैं तो सब लोग जोर से हंस पड़े।

अमर उजाला, 2001

सवाल का जवाब

उस दिन रविवार था। मैं कॉलोनी के मार्केट में जाने के लिए तैयार हुआ तो तन्मय भी साथ चलने की जिद करने लगा। उसकी दादी बोलीं, ''ले जाइए न! आजकल दिवाली आने की खुशी में बाजार खूब सज रहे हैं। बच्चा है, देखकर खुश होगा।''

''हां, लेकिन इससे ये वादा ले लो कि किसी चीज की जिद नहीं करेगा।'' मैंने कहा।

''आप भी कैसे दादा हैं। अरे, पोता अपने दादा से जिद न करेगा तो किससे करेगा? ले जाइए और जो कहे वो खरीद दीजिएगा।''
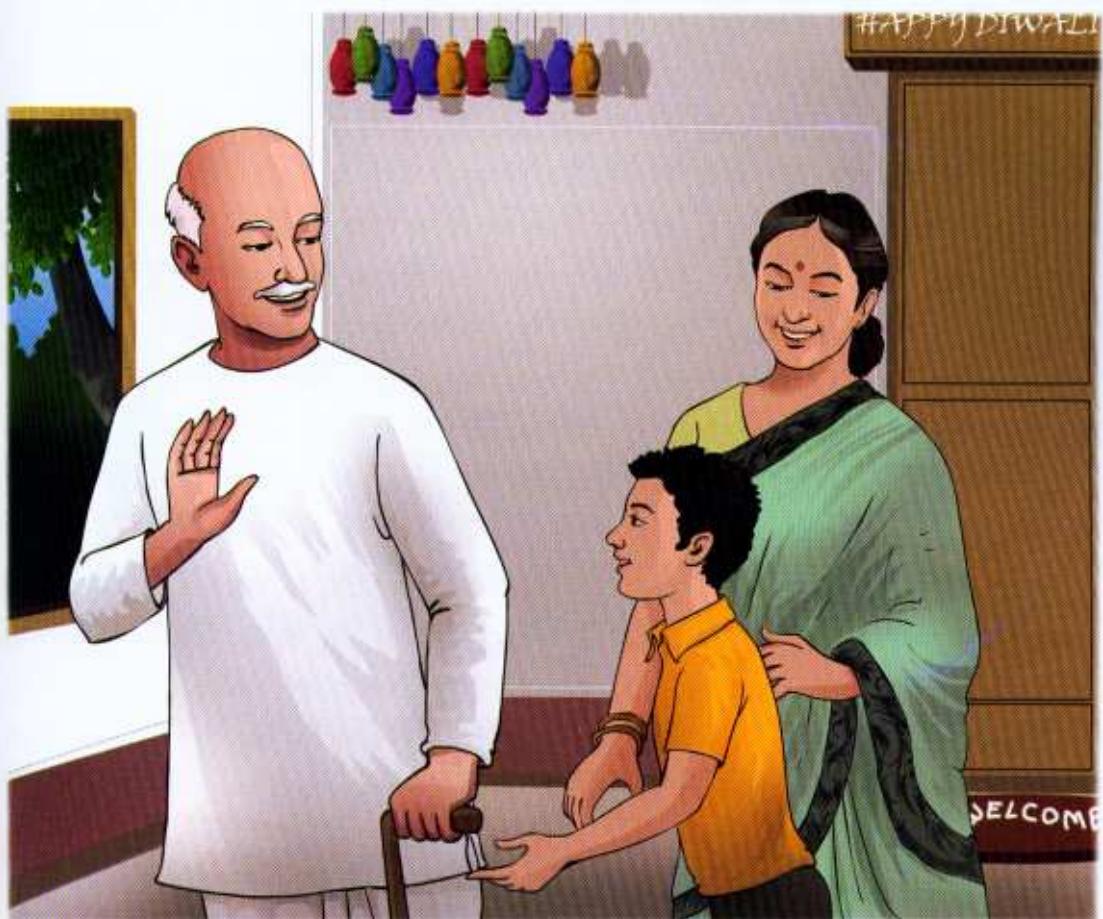
दादी की इस फटकार पर मेरी क्या हिम्मत थी जो पोते तन्मय को बाजार साथ न ले जाता।

कुछ रविवार की छुट्टी के कारण और कुछ पास आ रही दिवाली के कारण बाजार में कुछ ज्यादा ही गहमागहमी थी। मैंने तन्मय को सावधान कर दिया था कि मेरा हाथ छुड़ाकर न जाना। मुझे एक दुकान से कुछ सामान लेना था। मेरे हाथ में लंबी लिस्ट थी और दुकान में भीड़ भी कुछ ज्यादा ही थी। सो इंतजार करना ही था। उस दुकान के सामने सड़क के किनारे पटाकों की दुकान लगी थी। उसके सामने बच्चों और बड़ों की भीड़ थी। कुछ लोग बड़े-बड़े बंडलों में पटाके बंधवाकर ले जा रहे थे। कुछ बच्चे हाथ में सीमित पैसे लिए, महंगे सामान को देखकर यह तय नहीं कर पा रहे थे कि बम लें या अनार लें या बड़ी फुलझड़ी लें। जितनी बार विचार बदलता उतनी बार वे किसी-न-किसी आइटम का दाम पूछते और हाथ के पैसों से जब वो मेल न खाता तो चुप होकर दुकान के दूसरे आइटम देखने लगते और सोचते कि क्या लें, क्या न लें! ऐसे बच्चों की भीड़ भी कुछ ज्यादा थी, तभी तो दुकानदार झुंझलाकर चीजों के दाम उन्हें कुछ ज्यादा ही बता देता था। एक-दो बार तो वह झुंझला भी गया कि "लेना-वेना कुछ है नहीं, बस दाम पूछ रहे हैं। जाओ, घर से ढेर से पैसे ले आओ, तब खरीदना पटाके। हुंह! आ जाते हैं टाइम बरबाद करने।" दुकानदार की यह बात मुट्ठी में अपनी इच्छाओं को बंद किए बच्चों को चुभी तो जरूर होगी, लेकिन उनकी मजबूरी ने इस चुभन को बरदाश्त कर लेने के सिवा कुछ न कहने दिया। वे बस चुप होकर दुकान में रखे तरह-तरह के पटाकों को देखकर ऐसा भाव प्रकट करते रहे जैसे कुछ नहीं हुआ है। बच्चों की इस भीड़ में कुछ ऐसे बच्चे भी थे जो गरीब थे, मैले-कुचैले कपड़े पहने थे और उनके हाथ में एक रुपया तक न था। दुकानदार बीच-बीच में ऐसे बच्चों को भी फटकारकर भगा रहा था। पर वे तो बस 'विंडो शॉपिंग' करने आए थे सो हर दुकान पर खड़े होकर एक-से-एक अच्छे पटाकों को देख रहे थे और ग्राहक से उसका गुणगान और खास बातें बताने वाले दुकानदार को सुनकर खुश हो रहे थे। कम-से-कम इस जानकारी को लेकर वे अपने दोस्तों के बीच बैठकर इस चर्चा का आनंद तो ले ही सकेंगे कि इस बार दिवाली पर किस-किस तरह के कमाल वाले पटाके आए हैं।

पटाके की दुकान का यह सारा दृश्य देखने के लिए तन्मय कब मेरे पास से चला गया, यह अहसास मुझे तब हुआ जब मैं सामान की लिस्ट देकर वहां रखे एक स्टूल पर बैठ गया। तन्मय का ख्याल आते ही मैंने घबराकर इधर-उधर नजर घुमाई तो देखा कि वह सामने की ही दुकान पर खड़ा है और पटाके देख रहा है। मुझे तसल्ली हुई कि वह कहीं दूर नहीं गया है। वह जिस तन्मयता से दुकान का दृश्य देख रहा था उसे मैंने भंग करना उचित नहीं समझा। बाजार में शोर

भी बहुत था। उधर मेरा सामान पैक हो रहा था, सो मेरा उस ओर कुछ ज्यादा ही ध्यान था। फिर दस-ग्यारह साल का तन्मय समझदार बच्चा जो है।

अचानक तन्मय ने जोर से मुझे पुकारा, ''दादाजी!'

और मैंने मुड़कर देखा तो हैरान रह गया। तन्मय ने दुकानदार का हाथ पकड़ रखा था और दुकानदार घबराकर हाथ छुड़ाना चाहता था। मैं लपककर वहां पहुंचा तो तन्मय गुस्से से चीखा, ''ये झूठा दुकानदार है! इसने गरीब बच्चों को चोर कहकर उन्हें थप्पड़ मारे हैं। गरीब बच्चों पर हाथ उठाने का इसे क्या हक है? मैं इसे थाने ले जाऊंगा और इसके खिलाफ रिपोर्ट लिखवाऊंगा।''

उधर दुकानदार ने मुझे देखा तो और घबरा गया। वह जानता है कि इस कॉलोनी में मेरी कितनी इज्जत है और फिर मैं ठहरा पुराना अफसर।

''लेकिन इसने इन बच्चों को क्यों मारा?'' मैंने पूछा और देखा कि चार गरीब बच्चे एक ओर खड़े हो रहे हैं। अब तो भीड़ तमाशा देखने लगी थी।

मेरे प्रश्न के उत्तर में तन्मय ने कहा, ''दादाजी! ये गरीब बच्चे अगर पटाके नहीं खरीद सकते तो क्या इन्हें देख भी नहीं सकते? बस इनका यही जुर्म है। इस दुकानदार ने बस आव देखा न ताव, दुकान से बड़बड़ाता हुआ उतरा कि ''ये साले चोर, बार-बार दुकान पर आकर खड़े हो जाते हैं और कुछ चुराने का मौका देख रहे हैं।'' और तड़ातड़ इन बच्चों पर थप्पड़ बरसाने लगा। मैंने देखा तो दौड़कर इसका हाथ पकड़ लिया और कहा, ''कौन कहता है, ये चोर हैं? कहां हैं इनके पास चोरी के पटाके? खबरदार, अगर इन्हें अब एक थप्पड़ भी मारा।'' बताइए दादाजी! क्या पटाके की दुकान पर खड़े होकर उन्हें देखना जुर्म है? और अगर ऐसा है तो मैं भी तो पटाके देख ही रहा था। लो, मुझे भी चोर कहो।''

तन्मय जिस साहस और सच्चाई के साथ अपनी बात कह रहा था, उसे सुनने के लिए वहां इकट्ठा हुई भीड़ जैसे मौन हो गई थी। तन्मय के तर्क के सामने दुकानदार भी शर्मिंदा हो रहा था। शायद उसे यही ठीक लगा और उसने तत्काल कहा, ''अच्छा भाई! मुझसे भूल हुई। मैं माफी मांगता हूं।'' दुकानदार ने उनकी तरफ जुड़े हुए हाथ उठाकर कहा, ''आओ! तुम लोगों को मैं कुछ पटाके-फुलझड़ी मुफ्त देता हूं।'' और उसने चारों बच्चों को एक-एक पैकेट फुलझड़ी और थोड़े-थोड़े पटाके दिए।

भीड़ में किसी ने कहा, ''देखा राजू! उस लड़के ने किस सच्चाई और साहस से इस दुकानदार को सबक सिखा दिया।'' और कोई कह रहा था, ''बनिया बड़ा चालाक है। सोचा, माफी मांग लो

और दस-पांच के पटाके देकर इस मुसीबत से छुटकारा पा लो, वरना उलझ गए तो त्योहार की सारी दुकानदारी धरी रह जाएगी।"

मैं तन्मय को लेकर अपना सामान लेने पीछे वाली दुकान पर आया। सारा सामान चेक करके रखवाया और चलने लगा तो देखा कि तन्मय उन चारों लड़कों से बातें कर रहा है। मुझे नजदीक आते देखकर वे सब तन्मय के पास से मुसकराते हुए चले गए। मैं तन्मय के साथ घर लौट आया।

शाम को लगभग चार बजे मैं बैठा चाय पी रहा था कि तन्मय मेरे पास आया। बोला, "दादाजी! एक सौ पचास रुपयों में कितने रुपये मिलाने चाहिए कि वे दो सौ हो जाएं?"

मैंने बनावटी गुस्से से कहा, "तन्मय! तुम ये सवाल मुझसे पूछ रहे हो?"

"हां! क्योंकि इसका सही उत्तर आपको मालूम है, मुझे नहीं।"

"क्या मतलब?" मैंने आश्चर्य से कहा।

"वही जो मैंने कहा। बताइए, मेरे सवाल का जवाब जल्दी बताइए।" तन्मय मेरी परीक्षा ले रहा था।

"अरे भाई! उसमें पचास रुपये मिलाने होंगे।" मैंने कहा।

तन्मय ने मुझे डेढ़ सौ रुपये देते हुए कहा, "तो इन रुपयों में पचास रुपये मिलाकर इन्हें दो सौ रुपये बनाने का जादू आप ही दिखाइए।"

"लेकिन क्यों?"

"दादाजी! इस समय कोई सवाल नहीं। केवल जादू दिखाइए।"

और मैंने तन्मय को पचास रुपये दे दिए। तन्मय रुपये लेकर चला गया। उत्सुकतावश मैं भी पीछे-पीछे दबे पांव गया। फिर दरवाजे पर ठिठक गया। मैंने छिपकर देखा – तन्मय बाहर गया। वे चारों गरीब बच्चे गेट के बाहर खड़े थे। तन्मय ने उन्हें पचास-पचास रुपये दिए। एक बच्चा जोर से बोला, "अरे तनी भैया! पचास रुपये में तो ढेर सारे पटाके आएंगे।"

"शी!" तन्मय ने उसे चुप कराया और उन सबको इशारे से जाने के लिए कहा।

तन्मय लौटा तो मैं जल्दी से अपने कमरे की तरफ लपका। तभी मैंने देखा कि एक कोने में तन्मय का मिट्टी का गुल्लक टूटा पड़ा है। तन्मय मेरे कमरे में आया। बोला, "हां, दादाजी! अब पूछिए कि मैंने पचास रुपये क्यों मांगे थे? आपके सवाल का जवाब..."

मैंने तन्मय के मुंह पर हाथ रखकर कहा, "सवाल का जवाब मुझे मिल गया है।" और मैंने तन्मय को सीने से लगा लिया।

साहित्य अमृत, नवंबर, 2002

पापा, मम्मी को मत मारो

उस दिन अजय फिर उदास था। आज भी पापा ऑफिस से देर से लौटे थे। मां से कुछ बात की। फिर उन्हें गालियां देने लगे। मां ने कुछ सफाई देनी चाही तो उन्होंने मां पर तड़ातड़ थप्पड़ों और घूंसों की बरसात कर दी। फिर गुस्से में बड़बड़ाते हुए जाकर बिस्तर पर लेट गए। थोड़ी देर में खर्राटे लेने लगे। मां दूसरे कमरे में बैठी सिसकती रही। अजय पढ़ाई के बहाने सिर झुकाए बाहर के कमरे में चुपचाप बैठा रहा। उसका ध्यान सामने खुली किताब पर तो था ही नहीं। कुछ देर बाद उसने किताब बंद कर दी। जाकर मां के पास बैठ गया। मां जमीन पर ही सिसकते-सिसकते लेटी हुई थी। जी चाहा कि मां से कहे – मुझे भूख लगी है, पर कहने की हिम्मत न जुटा सका। जुटाता भी कैसे! मां ने भी तो कुछ नहीं खाया था। कल रात भी यही हुआ था। सुबह पापा ऑफिस जाने लगे तो मां ने लंच का डिब्बा बनाकर उनके सामने रख दिया था। पर वह उसे लिए बिना ही ऑफिस चले गए थे। पति खाना नहीं ले गए तो मां भी दिन भर भूखी रही होगी और अब रात को भी भूखी सो जाएगी।

अजय ने जब से अपने आस-पास की दुनिया को समझा है तब से वह बहुत सी बातों को समझने की कोशिश करता रहा है। पहले दादा-दादी साथ थे। पापा-मम्मी में कभी झगड़ा हुआ या नहीं, उसे याद नहीं। फिर धीरे-धीरे यह भी जाना कि दादा-दादी उनके बीच पड़कर झगड़े सुलझा देते हैं। वे मम्मी-पापा को डांट भी सकते हैं और दोनों उनकी बात मानते हैं, उनसे डरते भी हैं। फिर दादाजी गुजर गए। पापा का ट्रांसफर शहर से महानगर में हो गया। दादाजी थे तो गांव की खेती भी देख आते थे। अब यह जिम्मेदारी पापा को देकर गांव भेज दिया और हम तीनों महानगर में आ गए। दो कमरों का छोटा-सा फ्लैट। कुछ समय तक सब ठीक चला, लेकिन धीरे-धीरे मम्मी-पापा में फिर झगड़े होने लगे। फिर पापा ने मां पर हाथ उठाना भी शुरू कर दिया। अजय को डर लगता था कि कहीं पापा गुस्से में उसे भी न पीट दें। फिर दोनों बड़े हैं और वह दो बड़ों के बीच में कैसे बोले।

धीरे-धीरे अजय की समझ में यह भी आने लगा कि पापा जिस रात पीकर आते हैं उस रात ज्यादा ही झगड़ा और मारपीट करते हैं, लेकिन जिस रात पीकर नहीं आते, अब उस रात भी

झगड़ा और मारपीट करते हैं। अजय महसूस करने लगा कि पापा किसी-न-किसी बात को लेकर मां से उलझ जाते हैं और मां के कुछ कहते ही उसे मारने-पीटने लगते हैं। मां को वह कुछ कहने ही नहीं देते और न ही उसकी कोई बात सुनना चाहते।

अजय ने पापा-मम्मी के झगड़े के कारणों को समझने के लिए कई बार कुछ सुनने की कोशिश की। उसकी समझ में यही आया कि कभी घर के खर्चों, कभी स्कूल की फीस, कभी बनिए के बिल को लेकर पापा भड़क उठते हैं। मां को यही कहते सुना है कि मैं क्या करूं। जो देते हो इसमें घर नहीं चलता।

अजय को रोज-रोज के इन झगड़ों और मारपीट से अब अपने को अलग करना मुश्किल लगने लगा था। पापा के घर लौटने से पहले तक वह जो कुछ पढ़ाई और होमवर्क कर पाता, बस वही हो पाता। पापा के आते ही कभी खाने से पहले, कभी खाने के बाद झगड़ा होने लगता। कई बार मोजे और रूमाल तक को लेकर झगड़ा होता, लेकिन अब इतने दिनों में मां की पिटाई एक जरूरी बात हो गई थी। बिना पिटाई के झगड़े का अंत न होता।

अजय अब इस बात को गहराई से सोचने लगा है। आखिर पापा, मम्मी को क्यों पीटते हैं? मां सुबह से शाम तक घर का काम करती हैं। झाड़ू, पोंछा और बरतन साफ करनेवाली भी नहीं रखी है। खाना भी साधारण ही बनता है। मां की साड़ियां भी साधारण सी ही हैं। पिक्चर या किसी होटल में जाने की कल्पना करना बेकार है। अपनी जरूरतों की कोई फरमाइश मां नहीं करती। फिर मां पर पापा का यह जुल्म क्यों?

अजय समझ नहीं पा रहा था कि वह क्या करे? उसने सोचा – वह पांचवीं में पढ़ता है। बड़ा हो गया है। मां पर पापा का इस तरह रोज-रोज गुस्सा करना, मारपीट करना और घर से निकल जाने को कहना – कब तक चलेगा? आस-पास के फ्लैट के लोग क्या सोचते होंगे? उसे न जाने क्यों यह भय सताने लगा कि कभी इन फ्लैटों में रहनेवाले किसी लड़के ने इस बारे में कुछ पूछ लिया तो वह इस सच को कैसे झूठ में बदल पाएगा?

अजय ने कई बार सोचा कि इस बारे में किसी दोस्त या अपनी टीचर से बात करे, लेकिन क्या कहे? यह कि उसके पापा उसकी मम्मी को रोज पीटते हैं। इससे मम्मी-पापा की कितनी बदनामी होगी। फिर इस बात को अजय ने दूसरों से कहा है – यह जानने पर तो पापा अजय की हड्डी-पसली तोड़कर रख देंगे। अजय अजीब उलझन में फंस गया था।

उस दिन क्लास में उसका मन नहीं लगा। कल रात फिर पापा ने मम्मी को घसीट-घसीटकर पीटा था। स्कूल से वापस आया तो देखा कि मां रात के दर्द से अभी तक कराह रही हैं। अजय को आया देख वह किचन में जाकर खाना निकालने लगीं। अजय सीधे वहां पहुंचा। मां के हाथ

से प्लेट लेकर रख दी और हाथ पकड़कर उन्हें बाहर ले आया। उन्हें बैठाया। उनका चेहरा देखा। रात की पिटाई के चिह्न अभी मौजूद थे। अपने दोनों हाथों से मां का चेहरा पकड़कर उसने पूछा– मम्मी! पापा तुम्हें क्यों मारते हैं? और उसे इस प्रश्न का उत्तर मिला– मां के फफक-फफककर रोने से। वह भी अपने को नहीं रोक सका और मां के गले से लिपटकर खूब रोया।

लेकिन अजय के उन आंसुओं के बह जाने से उसका हृदय जैसे एकदम दृढ़ हो गया। जैसे उसने अपनी सारी भावुकता, अपनी सारी कमजोरियों पर विजय पा ली हो। उसने फुरती से अपने आंसू पोंछे, फिर मां के आंसू पोंछते हुए बोला – नहीं मां, तुम सही हो। तुम पर यह जुल्म अब मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।

"नहीं बेटे! तू इस झगड़े में मत पड़। तेरी उम्र इन कामों के लायक नहीं है, मां ने समझाया। वो मेरे पति हैं, तेरे पिता हैं। इस घर के मालिक हैं। उन्हें कुछ भी करने का हक इस समाज ने दिया है। यहां औरत पर होनेवाले जुल्मों की आवाज नहीं सुनी जाती। कुछ भी हो, मुझे तो तेरे पापा को अपना सुहाग मानकर उनकी पूजा ही करनी है।"

उसी रात पापा फिर शराब पीकर आए। शाम से ही अजय का मन पढ़ाई में नहीं लग रहा था। वह यही सोच रहा था कि काश! पापा को वह समझा सके कि मम्मी से झगड़ा न किया करें। होमवर्क की कॉपी का खाली पन्ना खुला हुआ था। हाथ में पेन था, लेकिन अजय होमवर्क कर नहीं पा रहा था। वह एक ही प्रश्न का उत्तर खोज रहा था कि पापा को कैसे समझाए?

रोज की तरह अजय के पापा आए और बोले, "सरिता, तू मेरी पत्नी है या दुश्मन? आज सब्जी में मिरची ही मिरची भर दी थी।"

"नहीं, आज तो मैंने बिना मिर्च-मसाले की सादी सब्जी बनाई थी।"

"देखा...देखा...है न मेरी दुश्मन, जो मुझे बिना मसाले की सब्जी खिलाती है। तू...तू...अपने को क्या समझती है...ऐं..." और राकेश बड़बड़ाने लगा। सरिता को पीटने लगा। साथ में गालियों की बौछार।

उधर अजय परेशान। दूसरे कमरे में मां के ऊपर हो रहे जुल्म की आवाजों से उसके कान फटने लगे थे। मां चीख रही थी। राकेश उसे पीटे जा रहा था। अजय की कलम अनजाने ही होमवर्क की कॉपी में लिखने लगी थी– "पापा, मम्मी को मत मारो" ज्यों-ज्यों मारपीट का शोर और मां की चीखें बढ़ रही थीं, अजय उतने ही आवेश में बार-बार लिखते जा रहा था – "पापा, मम्मी को मत मारो।" उसके अक्षर क्रमशः बड़े होते जा रहे थे और जब यह शोर थमा तो उसकी कॉपी के कई पन्ने भर चुके थे – जिनमें सारे अक्षर कुछ सेंटीमीटर से बढ़कर दो इंच का आकार

ले चुके थे। उस रात अजय इतने तनाव में था कि वह यह भी नहीं जान सका कि पापा, मम्मी को पीटते-पीटते थक गए हैं इसलिए शोर बंद हुआ है या मम्मी पिटते-पिटते बेहोश हो गई है।

रोज की तरह सुबह हुई। साढ़े आठ बजे राकेश तैयार होकर ऑफिस चला गया। उसने न सरिता का हाल पूछा, न अजय से कोई बात की। अजय ने देखा कि मां अभी भी औंधे मुंह पड़ी हैं। उसने चाय बनाई। मां को उठाकर चाय पिलाई। कराहते हुए सरिता ने कहा – "बेटा! आज तू स्कूल में ही कुछ लेकर खा लेना। किचेन में चीनी के डिब्बे में कुछ रुपये रखे हैं, वो ले जाना।"

"लेकिन तुम?"

"मेरी फिक्र न कर! मैं कुछ देर में उठूंगी। धीरे-धीरे ठीक हो जाऊंगी शाम तक।" लेकिन अजय अशांत था। वह तैयार होकर साढ़े नौ बजे स्कूल चला गया। बस्ते में सारी कॉपी-किताबें ले तो गया था, लेकिन मन जैसे अंदर-ही-अंदर विद्रोही हो रहा था। क्लास में बैठे अजय के कानों में किसी टीचर की कोई आवाज सुनाई नहीं दे रही थी। वह सुन रहा था तो केवल – पापा के धम्म-धम्म पीटने और मम्मी की चीखने की आवाजें। अचानक बगल में बैठे सुधीर ने उसे हिलाया, "अजय! तू कहां खोया है? निशा मैडम होमवर्क की कॉपी मांग रही हैं।" हड़बड़ाकर अजय ने होमवर्क की कॉपी निकाली और निशा मैडम को दे आया।

शाम को अजय घर लौटा। मां का चेहरा अभी भी उदास था। दोनों खामोश रहे। न मां ने कुछ खाया था, न अजय ने। मां ने कुछ देना चाहा तो अजय ने मना कर दिया। चुपचाप जाकर अपनी मेज कुरसी पर बैठ गया। मां भी आज चुप थी। उसके पास भी अब कहने-समझाने को जैसे कुछ न बचा था; किंतु अजय के अंदर जैसे कोई शक्ति जाग रही थी। उसका चेहरा तमतमा रहा था। मुट्ठियां कसी हुई थीं और कुहनियों के सहारे उसने अपना सिर बंधी मुट्ठियों पर टिका रखा था। जैसे मन-ही-मन वह कोई संकल्प कर रहा हो।

और वह क्षण आ गया जिसकी अजय प्रतीक्षा कर रहा था। राकेश घर के अंदर आया। आज भी वह रोज की तरह पीकर आया था, बल्कि कुछ ज्यादा ही धुत था। आते ही लड़खड़ाती जबान से बोला, ''स...रि...ता... खाना ला...'' और धम् से एक कुरसी पर बैठ गया। सरिता एक प्लेट में थोड़ी सूखी सब्जी और रोटी ले आई। उसे देखते ही राकेश भड़क उठा, ''ये खाना है।'' और हाथ मारकर प्लेट फेंक दी। फिर भद्दी सी गाली देकर सरिता को पीटने लगा।

और तभी अजय पूरी ताकत से चिल्लाया, ''खबरदार पापा! अगर मम्मी पर हाथ उठाया और झपटकर मां के सामने आकर खड़ा हो गया।'' नशे में धुत राकेश भी चीखा, ''अबे...हट यहां से, मां का पुत्तर।'' और पूरी तरह से उसने अजय का हाथ पकड़कर उसे धकेल दिया। अजय का सिर वहां रखी अलमारी से टकराया। एक चीख निकली और वह बेहोश हो गया। सरिता घबराकर अजय पर झपटी। उसे उठाया। अजय के सिर से खून बह रहा था। पलक झपकते सरिता अजय को उठाकर दरवाजा खोलकर बाहर भागी। राकेश इस घटना से सहम गया था। सरिता ने किसी तरह पड़ोसियों की मदद से अजय को अस्पताल पहुंचाया। सारी रात वह अजय के पास ही अस्पताल में रही।

निशा मैडम का सातवां पीरियड खाली रहता था। वह होमवर्क की कॉपियां उसी पीरियड में चेक करती थीं। उस दिन अजय की कॉपी देखकर वह पहले तो चौंकी। फिर जैसे वह किसी गंभीर बात की आशंका से सिहर उठीं। वह चाहती तो थीं कि तुरंत प्रिंसिपल से इस बारे में बात करें, लेकिन सातवें पीरियड के बाद छुट्टी की घंटी बज चुकी थी।

अगले दिन निशा मैडम प्रिंसिपल के कमरे में बैठी उन्हें अजय की कॉपी दिखा रही थीं। तभी अजय की क्लास के दो-तीन लड़के वहां आए। उन्होंने बताया कि अजय के सिर में गहरी चोट लगी है और वह अस्पताल में गंभीर हालत में भरती है। यह सुनते ही प्रिंसिपल, निशा मैडम और अजय की क्लास के कुछ बच्चे अस्पताल के लिए निकल पड़े।

अस्पताल के जिस वार्ड में अजय भरती था, उसके बाहर ही राकेश चुपचाप खड़ा था। अंदर अजय लेटा था। उसके सिर पर पट्टियां बंधी थीं और सिरहाने मां बैठी थी। एक बच्चे ने दूर से ही

देखकर निशा मैडम को इशारे से बता दिया कि अजय के पापा खड़े हैं। प्रिंसिपल और बच्चे तो सीधे अजय को देखने चले गए, लेकिन निशा मैडम राकेश के पास रुक गईं। उन्होंने अजय की कॉपी देखकर जो कुछ कहा होगा, उसे इसी से समझना काफी होगा कि राकेश बिलख-बिलखकर रोता हुआ आया और अजय के पलंग पर सिर पटक-पटककर अपनी भूलों के लिए माफी मांगने लगा। उसे किसी तरह शांत किया गया। अजय अभी भी बेहोश था। वह बेहोशी में बार-बार यही बुदबुदा रहा था – 'पापा, मम्मी को मत मारो।' और राकेश रो-रोकर कह रहा था, "बेटा! आंखें खोल। मैं वादा करता हूं, अब कभी तेरी मां पर हाथ नहीं उठाऊंगा।" तभी डॉक्टर और नर्स आ गए। उन्होंने मरीज के पास भीड़ न लगाने की हिदायत देकर सबको हटा दिया। प्रिंसिपल ने डॉक्टर से पूछा तो उन्होंने इतना ही कहा कि अजय अब खतरे से बाहर है, लेकिन सबके कानों में अजय की आवाज बराबर गूंज रही थी – "पापा, मम्मी को मत मारो।"

साहित्य अमृत, 2004

मैं पढ़ नहीं सका

'संजय आयरन वर्क्स' का बोर्ड जिस दुकान के ऊपर लगा है, उसका मालिक कोई 30 वर्षीय युवक संजय है। इस दुकान में लोहे के दरवाजे, जालियां, आदि तमाम लोहे का काम होता है।

रोज की तरह उस दिन भी संजय ने दुकान खोली। उसके कारीगर आ गए थे। दिन का काम शुरू करने की तैयारी हो रही थी। तभी एक रिक्शा आकर रुका। उस पर से एक बूढ़े सज्जन उतरे और दुकान के मालिक को उनकी निगाहें खोजने लगीं। संजय एक कारीगर को कुछ काम समझा रहा था। उसने वहीं से आवाज दी – 'बैठिए बाबूजी, मैं अभी आया।''

बूढ़े बाबूजी संजय की मेज-कुर्सी के सामने रखी लोहे की दो कुर्सियों में से एक पर बैठ गए। कुछ ही मिनटों में संजय आया और अपनी कुर्सी पर बैठ गया।

''बताइए बाबूजी, क्या काम है?'' – संजय ने कहा और वह उन बूढ़े बाबूजी में अतीत का कोई बहुत जाना-पहचाना चेहरा खोजने लगा।

– ''बेटा, खिड़की में लोहे की जाली लगवानी है। आजकल चोरी-चकारी बहुत हो रही है।''

''आप कहां रहते हैं?'' – संजय ने पूछा।

– ''यहीं मार्किट के पीछे वाली कॉलोनी में। तिरपन नंबर मकान है।''

– ''यहां किसके पास रहते हैं?''

''मेरा बेटा है। कॉलेज में प्रोफेसर है।'' बड़े गर्व से उन्होंने कहा – ''मैं अध्यापक रहा हूं। मेरे पढ़ाए बच्चे आज बड़े-बड़े अफसर बने बैठे हैं।''

संजय ने देखा कि बूढ़े बाबूजी ने यह बात बड़े गर्व से कही थी। कोई और होता, तो कहता कि बुढ़ापे में लोगों में ज्यादा बोलने और बिना पूछे ही अपने बारे में बताने की आदत होती है। लेकिन संजय ने ऐसा नहीं सोचा। वह उन्हें पहचान गया था। इसलिए उनकी बात पूरी होने पर उसने पूछा – ''आप मुझे पहचानते हैं?''

उत्तर में बूढ़े बाबूजी ने अपने चश्मे के मोटे कांचों के सहारे संजय को पहचानने की कोशिश की, पर निराश हो गए।

— "नहीं बेटा, मैं तुम्हें नहीं पहचान पाया।"

— "लेकिन मैंने आपको पहचान लिया है। आप बलदेव मास्टर हैं न!"

अब बूढ़े और पोपले मुंह की झुर्रियों में हलकी हंसी दिखाई दी। वह बोले – "हां-हां, में बलदेव मास्टर ही हूं। लेकिन तुम...?" वह अपने चश्मे के सहारे संजय को फिर से पहचानने की कोशिश कर रहे थे।

— "आपको शायद याद हो। सत्रह-अठारह साल पहले महेंद्रगढ़ के सरकारी स्कूल में आपका एक छात्र सातवीं में पढ़ता था। उसको आप घोंचू कहा करते थे। कहते थे, इसे कुछ नहीं आता। यह तो एकदम घोंचू है। एक तरह से उसका नाम ही घोंचू रख दिया था।"

— "हां-हां, याद आया। एक छात्र था।"

"वह छात्र मैं ही हूं।" संजय ने कहा – "आप उसको किसी-न-किसी गलती पर सजा देते थे।"

"अरे बेटा!" हंसकर बलदेव मास्टर बोले – "स्कूल में ये सब बातें होती ही हैं।"

"नहीं! एक दिन ऐसा कुछ हुआ, जिसने मेरी जिंदगी की राह बदल दी। आपको शायद याद हो, उस दिन होमवर्क न करके आने के कारण आपने मुझे बहुत पीटा था। और आपकी उसी मार ने मुझे भटकने के लिए मजबूर कर दिया।"

"क्या!" आश्चर्य से बलदेव मास्टर ने पूछा – "लेकिन...!"

– "आपकी इस मार से दरअसल मेरे मन में पढ़ाई के प्रति नफरत पैदा कर दी थी। मैंने घर आकर मां से कहा था कि अब मैं स्कूल पढ़ने नहीं जाऊंगा। और फिर मां के लाख समझाने के बावजूद मैं स्कूल नहीं गया।"

संजय एक क्षण को रुका। फिर बोला – "सर, आप तो जानते थे कि मेरे पिता चौकीदार थे। और एक दिन डाकुओं से मुकाबला करते हुए वह शहीद हो गए थे। तब मैं पांच-छह बरस का था। फिर यह भी आपको याद होगा कि मेरी मां मुझे आपके पास लेकर आई थी। स्कूल में दाखिला कराने के लिए।"

"हां-हां, याद है!" – बलदेव मास्टर ने कहा।

– "तो यह भी याद होगा कि मेरी मां ने आपको सारी मजबूरी बताकर कहा था कि यही लड़का अब मेरा सहारा है। यही मेरी जिंदगी में रोशनी करेगा। पढ़-लिखकर कुछ बन जाएगा, तो जिंदगी आराम से कट जाएगी। और आप खुश हुए थे कि एक गरीब विधवा अपने बच्चे को पढ़ाना चाहती है।"

"हां!" – बस इतना ही कहा बलदेव मास्टर ने। लेकिन संजय कहता जा रहा था – "उसके बाद मैं आपकी नजरों में घोंचू बन गया, क्योंकि और बच्चों के माता-पिता घर पर उनकी पढ़ाई में मदद करते थे। उनका होमवर्क करा देते थे। पर मुझे कौन पढ़ाता? कौन होमवर्क कराता? मेरी निरक्षर मां? मैं पूरी कोशिश करता, दोस्तों से पूछकर किसी तरह क्लास का काम और होमवर्क कर लेता। फिर भी मुझे उसके लिए मिलती थी आपकी सजा। और उस दिन होमवर्क न करने के कारण आपने मुझे इतना मारा था कि मैंने तभी निश्चय कर लिया था कि आज के बाद मैं स्कूल की तरफ कदम नहीं बढ़ाऊंगा।"

– "तो क्या फिर तुमने पढ़ाई की ही नहीं?"

– "नहीं। कई दिनों तक तो मैं यों ही भटकता रहा, घूमता रहा। दो महीने बीत गए। फिर एक दिन मेरे मामाजी आए। उन्होंने हमारी हालत देखी, तो वह हमें अपने साथ सुजानगढ़ ले गए। मामा भी इतने संपन्न नहीं थे कि हमारी परवरिश करते, लेकिन उन्होंने रहने को छत और
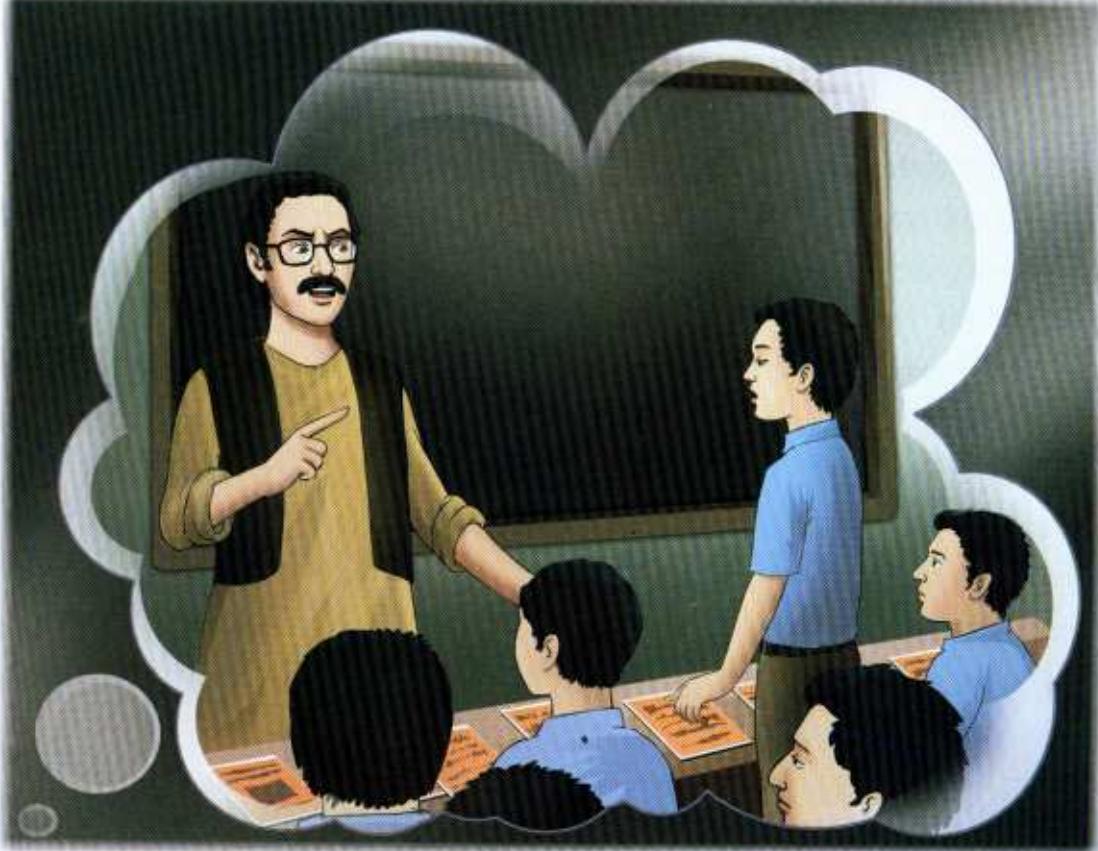
अपना साया हमें दिया था। वही बहुत था। हालांकि मामाजी ने कहा था कि चलो, तुम्हारा स्कूल में दाखिला करा देता हूं। जो कुछ मदद हो सकेगी, जरूर करूंगा। लेकिन मेरे मन में स्कूल के प्रति ऐसी नफरत जाग चुकी थी कि मैंने मामाजी से पढ़ाई करने के लिए साफ मना कर दिया। न जाने क्यों, मुझे यही लगता कि स्कूल में पढ़ाई करने का मतलब है, मास्टर साहब की मार खाना।''

''लेकिन बेटा, इतना बड़ा फैसला लेने से पहले मुझसे पूछा तो होता।'' – बलदेव मास्टर ने धीमी आवाज में कहा।

– ''आपके पास कैसे आता? आपके भय ने ही तो मुझे वह फैसला लेने के मजबूर किया था। पर बाद में सोचता रहा कि अगर मैं उस दिन के बाद स्कूल नहीं गया और पूरे दो महीने तक स्कूल नहीं गया, तो क्या एक दिन भी आपने सोचा कि घोंचू का क्या हुआ? स्कूल क्यों नहीं आ रहा है? कहीं बीमार तो नहीं है! मेरे किसी सहपाठी को ही भेजकर मेरी खबर पुछवा ली होती। मैं

तो बालक था, पर आप तो अध्यापक थे। मेरी मां और मेरे हालात को आप जानते थे। लेकिन मैं तो आपकी नजरों में घोंचू था, तब भला आपको मेरी फिक्र क्यों होती?''

''फिर तुमने क्या किया?''– बलदेव मास्टर जी ने भर्राए गले से पूछा।

– ''क्या करता? मामाजी के कहने-समझाने के बावजूद मैंने पढ़ाई करने की बजाए, दुकानों में नौकरी शुरू कर दी। मां भी आसपास के घरों में काम करने लगी थी, ताकि हम मामाजी पर बोझ न बनें। जिंदगी घिसट-घिसटकर चलती रही। मां धीरे-धीरे कमजोर होती गईं। बीमार रहने लगीं और एक दिन वह भी चल बसीं। मैं अब मामा की छाया में गुजर करने लगा था। एक साइकिल की दुकान पर काम मिल गया।

''कुछ बरस और गुजरे। फिर एक भले इनसान ने मुझे एक लोहे के कारखाने में नौकरी पर लगवा दिया। वहां मैंने काम सीखा भी और कुछ पूंजी भी जोड़ी। फिर एक भले आदमी ने बताया कि यहां श्यामगंज में लोहे की दुकान की गुंजाइश है। काम शुरू करो, तो चल निकलेगा। बस मैं श्यामगंज आ गया। यहां स्कूल की इमारत बन रही थी। उसमें लोहे के काम का ठेका मुझे मिल गया। मुझे लगा कि मैं स्कूल में तो न पढ़ सका, लेकिन उसकी इमारत बनने में मेरी मेहनत काम आएगी, यही क्या कम संतोष की बात है। इस स्कूल में जो विद्यार्थी पढ़ेंगे, वे तो कम-से-कम मुझसे अच्छे ही बनकर निकलेंगे।''

''क्या बाद में भी तुम्हारे मन में पढ़ने की इच्छा नहीं जागी?''– बलदेव मास्टर ने पूछा।

– ''नहीं, पढ़ाई से तो मन उचट गया था। क्योंकि आपकी उस दिन की मार ने दिल पर ऐसी खरोंच डाली थी कि उसकी टीस, मुझे पढ़ने से बराबर दूर करती रही। काश! आपने उस दिन मारा न होता, तो आज आप जिन विद्यार्थियों का जिक्र गर्व से करते हैं, उनमें से एक मैं भी होता!'' फिर गहरी ठंडी सांस लेकर संजय बोला – ''खैर, छोड़िए इन पुरानी बातों को। बताइए, क्या काम करना है?''

संजय ने देखा कि बलदेव मास्टर के गले में आवाज जैसे अटक गई है। और चश्मे के मोटे कांचों के पीछे आंसू बह रहे हैं।

नंदन, जून, 2005

पॉटर चिप्स

पिछले दिनों एक नई फूड कंपनी ने शहर के तमाम स्कूलों में जाकर बच्चों को अपने नए उत्पाद, पॉटर चिप्स के नमूना पैकेट मुफ्त में बांटे थे। ये चिप्स बच्चों को बहुत भाए। अब लगभग हर बच्चा पॉटर चिप्स खाना चाहता है। मयंक के स्कूल का मेन गेट तो बंद रहता ही है। वहां एक मूछों वाला गार्ड भी तैनात है। बिना लिखित आज्ञा के कोई बच्चा बाहर नहीं जा सकता था। लेकिन पिछले दिनों से आधी छुट्टी के समय साइकिल पर पॉटर चिप्स से भरे झोले लटकाए एक आदमी आने लगा था। उसने मुच्छड़ गार्ड को पटा लिया था। बस, बच्चे गेट की छड़ों के बीच हाथ डालकर उससे पॉटर चिप्स खरीद लेते थे।

आज मयंक अपने दोस्तों अमन, गौतम, यशस्वी, हर्षित, राहुल, आदि के साथ कैंटीन गया। अमन और गौतम ने पॉटर चिप्स मांगे, पर वे कैंटीन में न थे। तब तक मयंक ने अपने लिए समोसे का आर्डर दे दिया था। अमन ने बिगड़कर कहा – "क्या यार मयंक! तूने अभी तक यह नहीं जाना कि समोसा कितने पुराने जमाने का खाना है। अरे, यह इक्कीसवीं सदी है...! पिज्जा खाओ, बर्गर खाओ, पॉटर चिप्स खाओ। पॉटर चिप्स तो एकदम नई चीज है। सारी दुनिया के बच्चे इनके लिए दीवाने हो रहे हैं। फिर हम भला क्यों पीछे रहें? छोड़ इन समोसों को और चल हमारे साथ।" गौतम, हर्षित, यशस्वी ने भी उसकी हां में हां मिलाई और चल पड़े।

"यार, कुछ भी हो, पॉटर चिप्स का मजा ही कुछ और है!"– यशस्वी ने कहा।

"मेरे पापा तो कहते हैं कि हर वह चीज अपनाओं जिसे दुनिया के दूसरे देश अपना रहे हैं। चाहे वह फास्ट फूड हो, कपड़े हों, नृत्य हो, संगीत हो या कोई प्रसिद्ध उपन्यास!"राहुल ने कहा।

बातें करते-करते वे गेट तक आ गए थे। सबने एक-एक पैकेट पॉटर चिप्स खरीदा और मजे से खाने लगे। मयंक खा तो रहा था, पर धीरे-धीरे। गेट पर बच्चों की काफी भीड़ थी। दरअसल, यह भीड़ पॉटर चिप्स के शौकीनों की थी।

स्कूलों के बच्चों के माध्यम से पूरे शहर में पॉटर चिप्स पॉपुलर हो रहे थे। हर छोटे-बड़े स्कूल की आधी छुट्टी के समय, कोई न कोई व्यक्ति, चिप्स से भरे थैले लेकर पहुंच जाता और जब लौटता, तो उसके सारे थैले खाली होते थे।

एक दिन स्टाफ मीटिंग में वाइस-प्रिंसिपल माथुर साहब ने इस मुद्दे को दूसरे संदर्भ में उठाया – "सर, आजकल आधी छुट्टी में गेट पर बहुत भीड़ होने लगी है। इसका कारण है कोई चिप्स वाला। वह वे चिप्स लेकर आता है, जिन्हें बच्चे बहुत पसंद करते हैं। रोज आधी छुट्टी में गेट पर भीड़ होना ठीक नहीं है। कहिए तो कल से गार्ड को कह दूं...!"

"माथुर साहब।" प्रिंसिपल ने कहा – "बच्चे गेट से बाहर तो नहीं जाते। न ही वहां हंगामां करते हैं। चिप्स खरीदते हैं, खाते हैं। आखिर उस चिप्स कंपनी को हमने ही तो अनुमति दी थी कि वह बच्चों को मुफ्त पैकेट बांटे। अब अगर बच्चों को चिप्स पसंद आ रहे हैं, तो उन्हें खाने दीजिए।"

उस दिन मयंक ने थोड़े से ही चिप्स खाए थे। तीन-चार दिनों से लगातार आधी छुट्टी में दोस्तों के साथ वह चिप्स ही खा रहा था। हालांकि न जाने क्यों उसे पॉटर चिप्स खाने के बाद कुछ अजीब-अजीब सा महसूस होता था। लेकिन पहले उसने ध्यान नहीं दिया। उस दिन उसे लगा कि उसका सिर हलका-हलका दुख रहा है। आधी छुट्टी खत्म होने की घंटी बज चुकी थी,

सो उसने बचे हुए चिप्स का पैकेट मोड़कर रख लिया। जब घर लौटा, तो उसके सिर का दर्द पहले से ज्यादा बढ़ चुका था। उसने मां को बताया। शाम को वह मयंक को कॉलोनी के डॉक्टर के पास ले गईं।

मयंक के पापा डॉ. भारती एक बड़ी दवा कंपनी में रासायनिक इंजीनियर हैं। रात को घर लौटे, तो मयंक के सिर दर्द की बात मालूम हुई। मयंक की मां ने बताया – "डॉक्टर कह रहे थे कि आजकल बच्चों में सिर दर्द के कई केस आ रहे हैं। ये सब शाम को ही आते हैं। कोई फिल्म देखकर लौटता है, तो सिर दर्द की शिकायत करता है, कोई स्कूल से लौटकर सिर दर्द बताता है। बच्चों की आंखें कमजोर हो रही हैं।"

डॉ. भारती यह सब सुनकर हंस दिए। बोले – "इतने बच्चों की आंखें एक साथ कमजोर हो गईं? ऐसा कैसे हो सकता है?" फिर मयंक से बोले – "तुम सुबह तो ठीक थे। फिर यह कैसे हुआ?"

"हां पापा, मैं आधी छुट्टी तक ठीक था। आधी छुट्टी में मैंने जब पॉटर चिप्स खाए, तो उसके बाद से दर्द शुरू हो गया। आज तो मैंने थोड़े ही चिप्स खाए थे। बाकी पैकेट तो मेरे बैग में ही पड़ा है।"

''कोई बात नहीं! दवा खाकर सो जाओ। हां, कल से तुम पॉटर चिप्स न खाओ, तो अच्छा है।'' डॉ. भारती ने कहा।

डॉ. भारती ने कह तो दिया, लेकिन मयंक की गंभीरता देखकर उसकी मुश्किल को भी भांप लिया। लेकिन यह सोचकर कुछ नहीं बोले कि इसे अपने आप समस्या हल करने दो। रात को मयंक सो गया, तो डॉ. भारती ने उसके बैग से चिप्स का पैकेट निकालकर अपने बैग में रख लिया।

''यह क्या! बच्चों की तरह तुम्हें भी चिप्स पसंद आने लगे। अगर खाने का ऐसा ही शौक है तो नया पैकेट मंगा लेना। मयंक के बस्ते से क्यों चुराते हो?'' – मयंक की मां हंसते हुए बोली।

डॉ. भारती कुछ नहीं बोले। चुपचाप जाकर सो गए। अगले दिन उन्होंने अपनी लैबोरेटरी में पॉटर चिप्स का परीक्षण किया। उन्होंने पाया कि चिप्स की बिक्री बढ़ाने के लिए उनमें नशीली दवा का अच्छा खासा प्रतिशत मिलाया गया है। यही वजह है कि बच्चे एक बार खाने के बाद बार-बार इन्हें खाने लगे हैं। लेकिन कुछ बच्चों को इससे परेशानी होने लगी थी। मयंक उनमें से एक था।

डॉ. भारती ने पूरे रासायनिक परीक्षण की पिरोर्ट तैयार की और पुलिस कमिश्नर से जाकर मिले। फिर तो पुलिस ने अपने स्तर पर भी गोपनीय ढंग से पूरी जांच कराई। तमाम नमूने लेकर परीक्षण कराए गए। सबमें नशीली दवा होने के प्रमाण मिल जाने के बाद इस रहस्य को उजागर किया गया। पॉटर चिप्स कंपनी के मालिक को गिरफ्तार कर लिया गया। उसके कारखाने से बड़ी मात्रा में मादक दवाएं बरामद हुई। तमाम शहरों में पॉटर चिप्स की बिक्री पर रोक लगा दी गई और जहां-जहां जितना माल मिला, उसे जब्त कर लिया गया।

उस दिन एसेंबली में प्रिंसिपल ने कहा – ''पॉटर चिप्स का सनसनीखेज मामला आपने पढ़ा-सुना होगा। अपने माल की बिक्री के लिए किस तरह कंपनियां बच्चों को हथियार बना रही हैं और उन्हें तरह-तरह के हथकंडों से फुसला रही हैं, इसका यह एक उदाहरण है। अब तो ऐसी खबर भी आ रही है कि विदेशों में भी पॉटर चिप्स के दुष्परिणामों से लोग चिंतित हो रहे हैं, क्योंकि इससे बच्चों को खतरा है। उनके मस्तिष्क पर भी इसके दूरगामी प्रभाव पड़ते हैं। तुम नए जमाने, नई सदी के बच्चे हो। अपना शोषण करने वाले स्वार्थी लोगों के बहकावे में न आना ही समझदारी है। तुम्हें उनसे सवाधान होना है।''

अब मयंक के स्कूल के गेट पर आधी छुट्टी में बच्चों की कोई भीड़ इकट्ठी नहीं होती।

हिन्दुस्तान, 2005

एस एस एंटरप्राइजेज, नई दिल्ली द्वारा शब्द संयोजन तथा पुष्पक प्रेस प्रा. लि., नई दिल्ली द्वारा मुद्रित
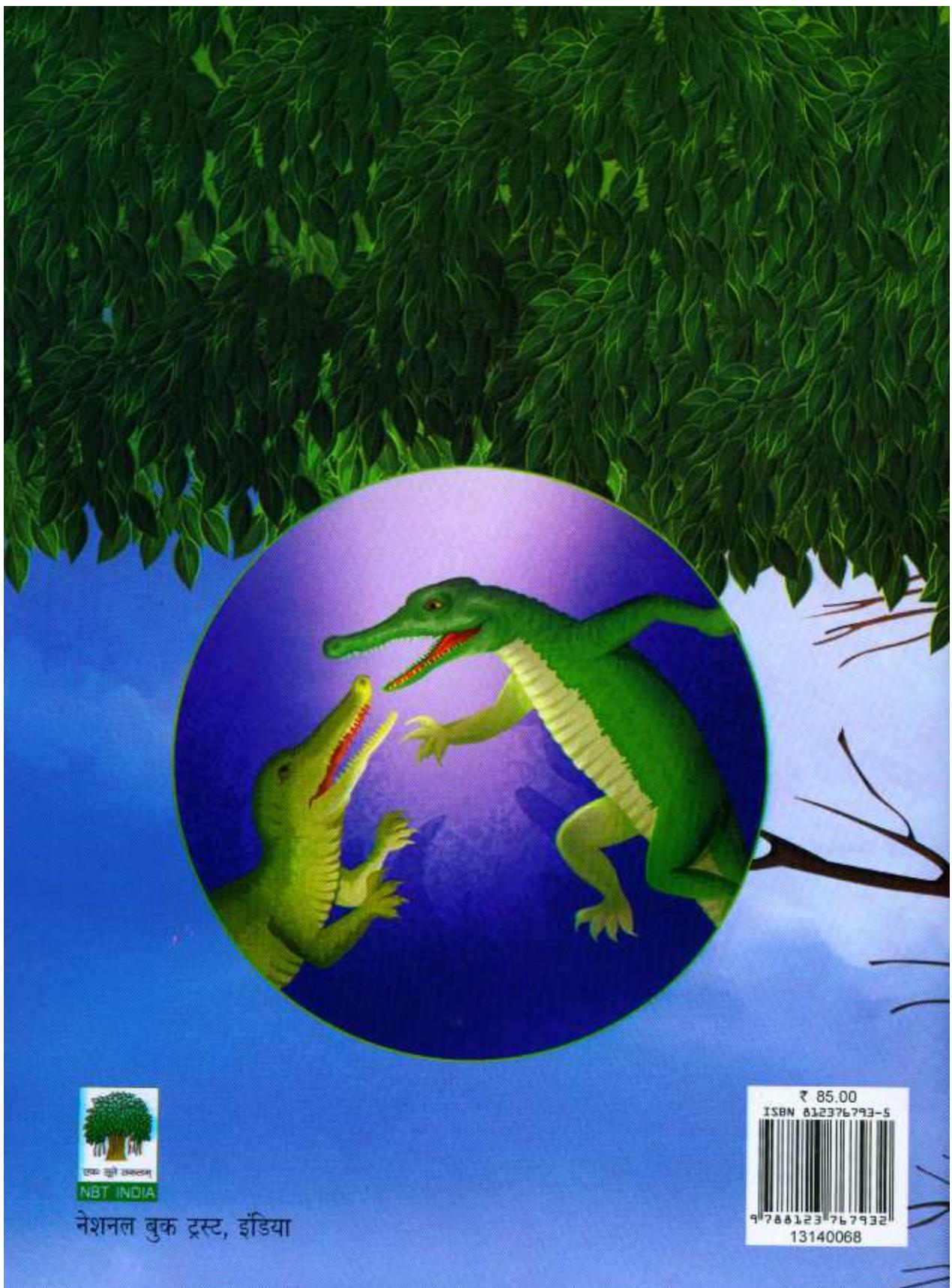
NBT INDIA
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
₹ 85.00
ISBN 812376793-5
9788123767932
13140068